RNI NO. - UPHIN /2004/13352
Postal Regn. No. - Mathura-13/2010-2012

"मैं व्रजभक्तिके पूर्व आचार्यों और सन्तोंके चरणोंकी धूलकणके समान भी नहीं हूँ। यथार्थमें श्रील रूप-सनातन आदि षड़ गोस्वामी तथा उस रूपानुग धारामें श्रील भक्तिविनोद ठाकुर, श्रीलभक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर प्रभुपाद, मदीय गुरुपादपद्म श्रीलभक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराज तथा श्रीलप्रभुपादके समस्त परिकर ही 'युगाचार्य' हैं। केवल अपने श्रीगौड़ीय सम्प्रदायके गौरवके लिए ही मैं 'युगाचार्य' उपाधिको स्वीकारकर अपने गुरुवर्गके चरणोंमें समर्पित कर रहा हूँ।"

—श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी महाराज

गौड़ीय वेदान्त प्रकाशन
GVP

।। श्रीश्रीगुरु-गौराङ्गौ जयतः ।।

श्री श्री भागवत पत्रिका

वर्ष—८ राष्ट्रभाषा हिन्दीमें श्रीश्रीरूप-रघुनाथकी वाणीकी एकमात्र वाहिका संख्या—(७-८)

विरह-विशेषांक— ५

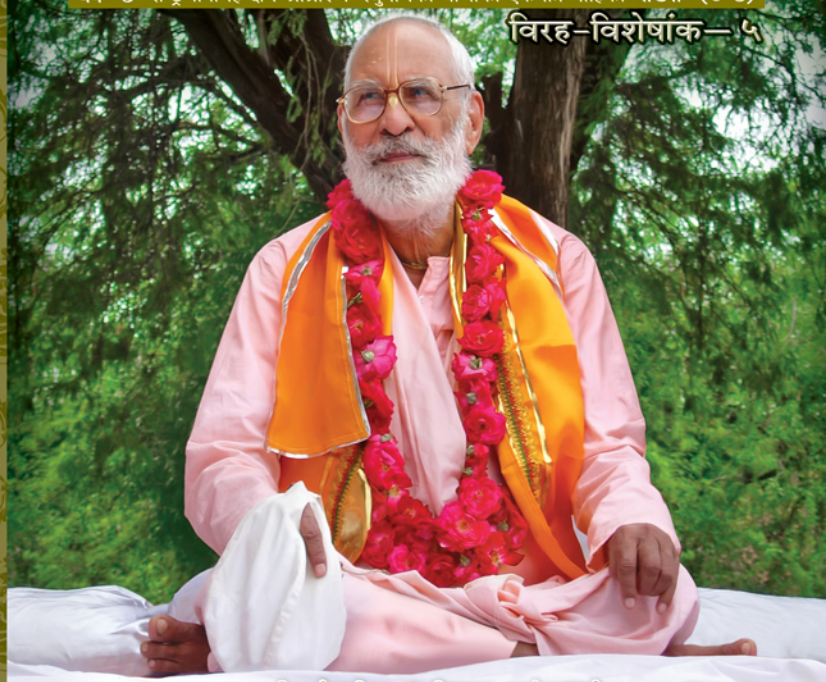

नित्यलीलाप्रविष्ट ॐ विष्णुपाद अष्टोत्तरशतश्री
श्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी महाराज

॥श्रीश्रीगुरु–गौराङ्गौ जयतः॥

वर्ष ८ | श्रीगौराब्द ५२५, पद्मनाभ-दामोदर मास
वि.सं. २०६८, आश्विन-कार्तिक मास ; सन् २०११, १३ सितम्बर–१० नवम्बर | संख्या ७–८

विषय–सूची

विरह-विशेषांक (संख्या–५)

विरह–गीत.....४
–डॉ (श्रीमती) मधु खण्डेलवाल

वास्तविक मिलन और विच्छेद–दोनों ही सेवा–भावनासे उत्पन्न १९
–श्रीश्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराज

विरह.....२७
–प्रपूज्यचरण अतीन्द्रिय भक्तिगुणाकर प्रभु

वास्तविक वस्तुको त्यागकर मनगढ़न्त धर्मका अनुसरण करना श्रील प्रभुपादकी धारा नहीं ३६
–श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त वामन गोस्वामी महाराज

विरह–व्यथित हृदयका करुण–क्रन्दन.....३९
–श्रीपाद जितकृष्ण प्रभु

वैष्णवों द्वारा प्रदत्त पुष्पाञ्जली–३..... ४१

श्रीश्रीराधा–कृष्णके अप्राकृत प्रेमधनमें धनी–श्रील महाराजजी..... ४२
–श्रीमद् गोपानन्द वन महाराज

विरह–स्मरण..... ४५
–श्रीमद् भक्तिकमल गोविन्द महाराज

कृतज्ञतापूर्ण पुष्पाञ्जलि ४८
–श्रीपाद भक्तिवेदान्त मङ्गल महाराज

पूज्यपाद श्रील नारायण महाराजजी–सर्वश्रेष्ठ दानी एवं आदर्श महापुरुष..... ५५
–श्रीपाद भक्तिप्रसाद विष्णु महाराज

वैष्णवोचित गुणोंसे विभूषित–श्रील महाराजजी..... ५९
–श्रीपाद प्रियानन्द वन महाराज

श्रीरूप गोस्वामीकी धारामें पूर्णता अभिषिक्त–परमपूज्य महाराजजी ६२
–श्रीपाद भक्तिबान्धव हृषिकेश महाराज

"जिनकर सुयश कहल ना जाय"..... ६६
–श्रीपाद राधामाधव दास

वाणी-वैशिष्ट्य-सम्पद्–३.....६९

[श्रील गुरुदेव और कार्तिक–व्रत एवं व्रजमण्डल परिक्रमा]

संस्थापक एवं नियामक

नित्यलीलाप्रविष्ट परमहंस ॐ विष्णुपाद
अष्टोत्तरशतश्री श्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराजके

अनुगृहीत
नित्यलीलाप्रविष्ट ॐ विष्णुपाद
श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी महाराज

प्रेरणा-स्रोत
नित्यलीलाप्रविष्ट ॐ विष्णुपाद
श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त वामन गोस्वामी महाराज

सम्पादक—श्रीमाधवप्रिय दास ब्रह्मचारी,
श्रीअमलकृष्ण दास ब्रह्मचारी

प्रचार सम्पादक—त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्तिवेदान्त वन महाराज,
त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्तिवेदान्त सिद्धान्ती महाराज

प्रचार सह-सम्पादिका—श्रीयुता उमा देवी दासी,
श्रीयुता सुचित्रा देवी दासी

सहकारी सम्पादक संघ—

(१) डॉ. श्रीवासुदेवकृष्ण चतुर्वेदी, पी-एच. डी., डी. लिट्. (संघपति)
(२) डॉ. श्रीअच्युतलाल भट्ट, एम. ए., पी-एच. डी.
(३) त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्तिवेदान्त तीर्थ महाराज
(४) डॉ. (श्रीमती) मधु खण्डेलवाल, एम. ए., पी-एच. डी.
(५) श्रीपरमेश्वरी दास ब्रह्मचारी 'सेवानिकेतन'
(६) श्रीपुरन्दर दास ब्रह्मचारी 'सेवाविग्रह'

कार्याध्यक्ष—श्रीपाद प्रेमानन्द दास ब्रह्मचारी 'सेवारत्न'

कार्यकारी मण्डल—श्रीविजयकृष्ण दास ब्रह्मचारी, श्रीमदनमोहनदास ब्रह्मचारी, श्रीप्राणकृष्णदास ब्रह्मचारी, श्रीगौरराजदास ब्रह्मचारी, श्रीदामोदरदास ब्रह्मचारी, श्रीसञ्जय दास ब्रह्मचारी, श्रीजगदीशप्रसाद दासाधिकारी, भक्त सोनु

ले-आउट और डिजाइन—श्रीकृष्णकारुण्य दास ब्रह्मचारी, श्रीविकास ठाकुर

प्रकाशक—त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्तिवेदान्त माधव महाराज

श्रीकेशवजी गौड़ीय मठ
जवाहर हाट, मथुरा-२८१००१ (उ. प्र.)
दूरभाष : 08791273306

श्रीगौड़ीय वेदान्त समिति ट्रस्टकी ओरसे
त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्तिवेदान्त माधव महाराज द्वारा
श्रीकेशवजी गौड़ीय मठ, जवाहर हाट, मथुरासे प्रकाशित।

Visit us at:
www.bhagavatpatrika.com
e-mail:
mathuramath@gmail.com,
vijaykrsnadas@gmail.com

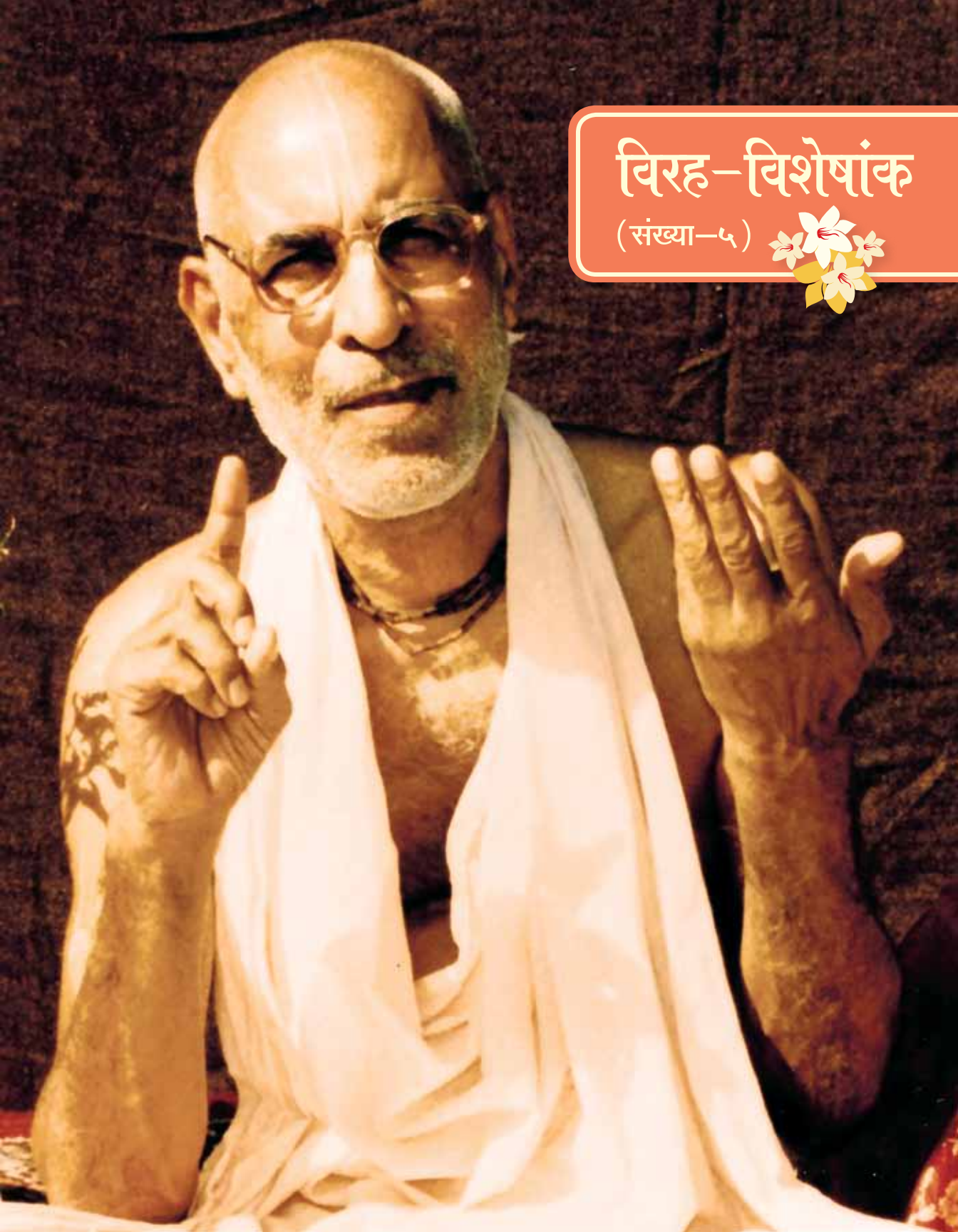

विरह-विशेषांक

(संख्या–५)

विरह–गीत

–डॉ (श्रीमती) मधु खण्डेलवाल

हे लोकपावन, जगदाराधन,
गौरकृपा–उन्मोचन–वरम्।
वात्सल्य–वर्षण के नवनीरद,
नयन पथके पथिक हों सदा॥१॥

भावार्थ–हे गुरुदेव! अभक्तोंके प्रति भी कारुण्यमयी दृष्टि रखनेके कारण भक्तजन आपको 'लोकपावन' कहते हैं, क्योंकि अभक्तोंको भक्ति की ओर उन्मुख करके आपने उनका भी कल्याण किया है। आपके आचरण, भाव, उच्च–आदर्श एवं व्यवहारका स्मरण करके जगत् नतमस्तक होकर आपकी आराधना करता है। आपने श्रीगौराङ्ग महाप्रभुकी महावदान्यतासे परिपूर्ण कथाओंका उन्मोचन करके जनमानसको गौर–कृपावारिमें सराबोर कराया है। पिताकी भाँति कृपायुक्त आपने अनेक सौभाग्यशाली जीवोंके हृदयमें भक्तिलताके बीजका आरोपण करके तथा नवीन श्यामल मेघके समान हरिकथाओंकी नव–नवायमान एवं सुरुचिपूर्ण वर्षाकर अगाध वात्सल्यके साथ उस बीजका सिञ्चन किया है। ऐसे आप हमारे नयनपथके सदैव ही पथिक बने रहें॥१॥

लौकिक व्यवहारमें परमहंस,
जन–जन प्रिय हे विश्वगुरु।
गुणदर्शन ही किया, दोष नहीं देखा कहा,
नयन पथके पथिक हों सदा॥२॥

भावार्थ–हे गुरुदेव! श्रील सनातन गोस्वामीकी भाँति सारग्राही परमहंसके गुणोंसे विभूषित होनेके कारण

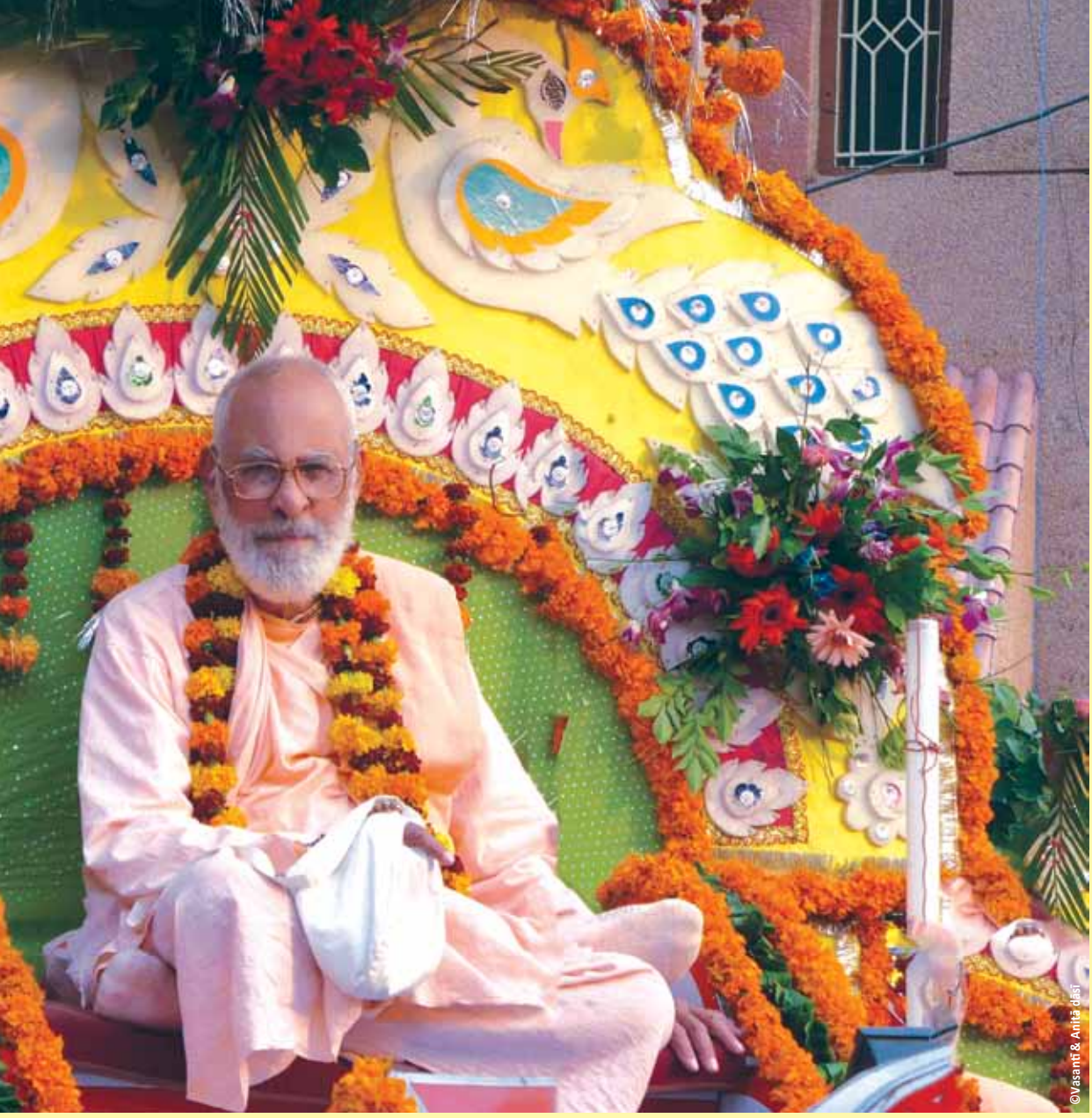

आपने लौकिक व्यवहारका निर्वाहकर सभीके प्रति अपनी आत्मीयता प्रदर्शित करके भी अपने परमहंसत्वका ही पूर्ण परिचय प्रदान किया है। आप अपने आश्रितजनोंमेंसे संन्यासियों, ब्रह्मचारियोंका कुशल–क्षेम तो पूछते ही थे, अधिकन्तु गृहस्थ–शिष्योंकी भी कुशलताका विशेष ध्यान रखते थे। आप तरुणोंको उच्च–शिक्षाके लिये उत्साहित करते थे, अस्वस्थ व्यक्तियोंको अस्पतालमें देखने जाते थे और यदि किसीकी मृत्यु हो जाती थी तो उसके परिवारी जनोंको अपने सद्वचनोंसे सन्तावना प्रदान करते थे। किसीके जन्मोत्सव तथा विवाहोत्सव इत्यादिके अवसरपर उन्हें वैदिक पद्धतिके विषयमें जानकारी देनेके साथ–साथ आप उन्हें 'लौकिक–पारलौकिक मङ्गलम् भवतु', 'कृष्णभक्ति भवतु', 'व्रजभक्ति भवतु' इत्यादि कहकर आशीर्वाद प्रदान करते थे। दिल्लीसे मथुरा आते समय

मार्गमें प्रसाद पानेसे पहले आप गाड़ीके ड्राइवरको प्रसाद देनेके लिये कहते। अपने इसी व्यवहारके कारण आप सबके प्रिय बन गये थे। आपके गुरुत्वमें ऐसा सामर्थ्य था कि लौकिक गायक पारलौकिक भजन गाने लगते, वादक मृदंग करताल बजाने लगते और उच्च शिक्षित व्यक्ति अपनी योग्यतानुसार पारमार्थिक सेवाओंमें निमग्न होनेके साथ ही निम्न–से–निम्न दिखलायी पड़नेवाली सेवाओंको भी निःसङ्कोच करने लगते थे। इस प्रकार सबके जीवनको मङ्गलमय बनानेवाले होनेके कारण आप विश्वके गुरु बन गये हैं। आप ऐसे गुण–पारखी थे कि हजारों प्रकारके दोषोंसे युक्त व्यक्तिमें भी क्या गुण हैं, उसे देखकर आप उस व्यक्तिको उसी प्रकारकी सेवामें नियुक्त करके उसका परमोत्तम मङ्गल विधान करते थे। आप कभी भी किसीके दोषको नहीं देखते थे अथवा किसीके भी दोषकी चर्चा तक नहीं करते थे, अभिभावककी भाँति केवलमात्र मङ्गलकी ही चिन्ता करके स्नेहपूर्ण शासन द्वारा दोषोंका संशोधन करते थे। ऐसे आप हमारे नयन–पथके सदैव ही पथिक बने रहें॥२॥

सम्बन्ध–ज्ञानके प्रकाशक,
भावानुकूल भाव–सिद्धि के वितरक।
प्रेमा–भक्तिके अनन्य उपासक,
नयन पथके पथिक हों सदा॥३॥

भावार्थ—हे गुरुदेव! जैसे चन्द्रमासे चन्द्रिका, सूर्यनारायणसे उसकी प्रभा अथवा समुद्रसे तरङ्गका सम्बन्ध है, वैसे ही भगवान्‌से उनके विभिन्नांश जीवका जो नित्य सम्बन्ध है, आपने जीवके इसी नित्य स्वरूपगत सम्बन्ध–ज्ञानको प्रकाशित कराया जिससे जीव प्रापञ्चिक जन्म–मृत्युके चक्रमें भटककर न रह जाय। आप स्वयं जिन भावोंमें विभोर रहते थे, उन्हीं भावोंकी सिद्धिके अनुकूल अभिधेय–मार्गमें आश्रितजनोंको नियुक्त रहनेके उपाय बतलाकर अर्थात् साधकोंकी हृदय–भूमिमें आप इन्हीं भावोंको जागृत कराके प्रेमभक्तिका मार्ग प्रशस्त करते थे। आप प्रेमाभक्तिके अनन्य अर्थात् अद्वितीय उपासक थे। ऐसे आप हमारे नयनपथके सदैव ही पथिक बने रहें॥३॥

भक्ति–प्रज्ञान–केशवके कीर्तिविस्तारक,
भक्तिविनोद–धाराके उतालक।
वामन त्रिविक्रम से सख्य परायण,
नयन पथके पथिक हों सदा॥४॥

भावार्थ—हे गुरुदेव! जगद्गुरु ॐ विष्णुपाद श्रीश्रीमद्भक्तिसिद्धान्त सरस्वती प्रभुपादके द्वारा 'कृतिरत्न'

उपाधिसे विभूषित उनके अन्तरङ्गजन, 'भक्तिके सम्पूर्ण रहस्योंके ज्ञाता', श्री श्रीमद्भक्तिभक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराजकी कीर्तिका विस्तारकर आपने जगद्–वन्दनीय कार्य किया है। आपने अपने गुरुदेवकी भुवन–मङ्गलमय जीवनी 'आचार्यचरित' का सृजनकर, अपने गुरुदेवको श्रील सरस्वती ठाकुरके मनोऽभीष्ट संस्थापक एवं परमप्रियके रूपमें प्रमाणित एवं विघोषित किया है। अपने गुरुदेवको श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त स्वामी महाराजके परम श्रद्धेय सतीर्थ एवं उन्हें विश्वमें श्रीमन् महाप्रभुकी वाणी तथा श्रील सरस्वती प्रभुपादके विश्व प्रचार हेतु दिये गये आदेशका पुनः पुनः स्मरण करानेवाले सन्यास गुरुके रूपमें प्रख्यापित किया है। आपने अपने गुरुदेवकी उपदेशावलीको जनसाधारण तक पहुँचाकर, अनेक मठों तथा अपने सभी लेखन–कार्योंको उन्हें समर्पितकर तथा उन्हींकी ही वाणी तथा उन्हींके ही द्वारा प्रदर्शित आचार–विचारको अपने आचरणके माध्यमसे पद–पदपर सभीको स्मरण कराकर उनके परम यशका सम्पूर्ण विश्वमें विस्तार किया है। गौड़ीय वाङ्मयके प्रकाश–स्तम्भ सच्चिदानन्द श्रील भक्तिविनोद ठाकुरकी रूपानुग–धाराको उच्छलित करके आपने लाख–लाख जनोंको उत्तमा–भक्तिकी महिमामें सुप्रतिष्ठित किया है। अपने ज्येष्ठ

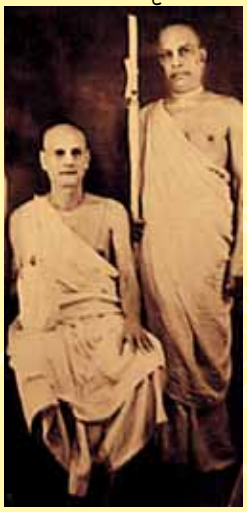

गुरुभ्राता श्रील भक्तिवेदान्त वामन गोस्वामी महाराजके साथ आपकी गौरवभावयुक्त वैचारिक सख्यता तथा श्रील भक्तिवेदान्त त्रिविक्रम गोस्वामी महाराजके साथ आपकी गौरवभावपूर्ण वैचारिक सख्यताके साथ–साथ हास–परिहासपूर्ण भावनात्मक सख्यके दर्शनका भी सौभाग्य प्राप्त हुआ। ऐसे अनुपम गुणोंवाले आप हमारे नयन–पथके सदैव ही पथिक बने रहें॥४॥

प्राण हथेली पर रखकर अपने,
गुरु–सेवा का आदर्श दिया।
अनङ्ग–मोहन के निष्कपट सेवक,
नयन पथके पथिक हों सदा॥५॥

भावार्थ–हे गुरुदेव! अपने गुरुदेवके परमप्रिय शिष्य श्रीअनङ्गमोहन ब्रह्मचारीके असाध्य एवं अस्पृश्य रोग राजयक्ष्मा (टी०बी०) से स्वयंके संक्रामित होनेकी आशङ्काको भी अनदेखा करके आपने अपने गुरुदेवकी प्रसन्नता हेतु

प्राण हथेलीपर रखकर श्रीअनङ्ग मोहन ब्रह्मचारीकी सेवा करके गुरु–सेवाका एक महान् आदर्श स्थापित किया है। इस प्रकार आपने गुरुदेव द्वारा प्रदत्त 'भक्त–बान्धव' उपाधिकी यथार्थताको प्रमाणित किया है। ऐसे आप हमारे नयनपथके सदैव ही पथिक बने रहें॥५॥

कृष्णाश्रित जनोंके प्रतिपालक,
कोटि–कोटि जनोंके हितकारक।
गौरप्रियजनोंके परम प्रियकर,
नयन पथके पथिक हों सदा॥६॥

भावार्थ—हे गुरुदेव! 'कृष्ण ही हमारी एकमात्र गति हैं, वे ही हमारे शरण्य हैं अथवा 'कृष्णा (श्रीमती राधिका) के पक्षपाती होनेका भाव रखनेवाले'—ऐसे कृष्णाश्रित जनोंको पारकीय भावकी शिक्षा देकर आप उनका पालन–पोषण करते थे। आपने विशुद्ध भक्तिरसका वितरण करके, हरिनाम सङ्कीर्त्तनका सुयोग प्रदान करके, ग्रन्थ तथा पत्रिकाओंके प्रकाशन, मठ–मन्दिरोंकी स्थापना, व्रजमण्डल–गौड़मण्डल–क्षेत्रमण्डलकी परिक्रमाओंके आयोजन तथा सर्वत्र स्वयं एवं अपने प्रचारकोंको प्रेरित करके करोड़ो–करोड़ो प्राणियोंका कल्याण किया है। ''**गौर–प्रेम रसार्णवे, से तरङ्गे जेबा डुबे, से राधा–माधव अन्तरङ्ग** अर्थात् जो गौर–प्रेमरूपी तरङ्गोंसे युक्त रससमुद्रमें डूबते हैं, वे श्रीराधामाधवकी अन्तरङ्गलीलामें प्रवेश प्राप्त करते हैं।"—जगतमें इस शिक्षाको विघोषित करके आपने गौर–प्रिय षड्गोस्वामियोंकी विचार–धाराको विशुद्ध रूपमें प्रवाहितकर गौरप्रियजनोंको परम आनन्दित किया है। ऐसे आप हमारे नयनपथके सदैव ही पथिक बने रहें॥६॥

वृन्दावन

दिल्ली

गोवर्धन

नवद्वीप

दुर्वासा

पुरी

अतिकोमलकाञ्चनमूर्तिधरम्,
सिंहसदृशकृतम् हुङ्कारवरम्।
प्रभुपाद–मनोऽभीष्ट–सदृढ़–कृतम्,
नयन पथके पथिक हों सदा॥७॥

भावार्थ—हे गुरुदेव! आपके श्रीअङ्ग अतिकोमलताकी मूर्ति थे जिनसे काञ्चनमयी (स्वर्णिम) रश्मियाँ निःसृत हुआ करती थीं—आपके अस्वस्थलीलाके समय एवं अप्रकटकालमें भी सभीको ऐसे दर्शनका सौभाग्य प्राप्त हुआ था। रूपानुगधाराके प्रतिकूल विचारोंके प्रति आप सिंहके समान अदम्य गर्जना करते हुए 'रूपानुग' धाराको ही सर्वोत्तम प्रमाणित एवं प्रतिष्ठित करते, क्योंकि एकमात्र श्रीरूपानुगत्यमें ही श्रीश्रीराधाकृष्णकी सम्पूर्ण सेवा प्राप्त हो सकती है। आपकी ऐसी हुंकारसे सभीका वैचारिक कल्मष दूर हो जाता था। श्रीरूपानुग–धाराकी विजय–पताकाका उड्डयन करनेवाले (फहरानेवाले) श्रील प्रभुपादके मनोऽभीष्ट '**रसस्तु परकीयाम्** अर्थात् परकीय रस ही सर्वश्रैष्ठ है' को आपने 'उज्ज्वल नीलमणि, रासपञ्चाध्यायी' इत्यादि ग्रन्थोंके अनुवाद एवं प्रकाशन द्वारा सुदृढ़ किया है। ऐसे आप हमारे नयनपथके सदैव ही पथिक बने रहें॥७॥

वृन्दावन महिमा के प्रबोधानन्द,
नवद्वीप वैभव के भक्तिविनोद।
भागवत्–कथाओं के हे शुक,
नयन पथके पथिक हों सदा॥८॥

भावार्थ—हे गुरुदेव! श्रील प्रबोधानन्द सरस्वतीने अपनी रचनामें वृन्दावनीय केलि–प्राङ्गणका जो सरस, सुस्वादु और अद्भुत वर्णन किया है, आपने अपने श्रीमुखारविन्दसे उसी वृन्दावनकी महिमाका उच्चस्वरसे गान करके उसे और भी आस्वादनीय

बना दिया है। श्रीवृन्दावन (कृष्णवन) से श्रीनवद्वीप (राधावन) की वैशिष्ट्यपूर्ण श्रेष्ठताको स्थापित करके उसके दिव्य, अप्राकृत और मनोरम गुणोंके वैभवको निरूपितकर आपने भक्तोंको श्रील भक्तिविनोद ठाकुरका सामुख्य कराया है। अपनी सुमधुर, सुललित एवं सुविचित्र सुरावलीसे जब आप

भागवतीय कथाओंका परिवेषण करते थे, तब मानो श्रीशुकदेव गोस्वामी स्वयं आपके मुखाग्रस्थ हो जाते थे अर्थात् ऐसा प्रतीत होता था मानो श्रीशुकदेव गोस्वामी स्वयं उपस्थित होकर आपके मुखके माध्यमसे कथा बोल रहे हों। ऐसे आप हमारे नयनपथके सदैव ही पथिक बने रहें॥८॥

रूप विश्वनाथ अभिन्न तनु,
सनातन रघुनाथ हृत विज्ञ विभु।
नरोत्तम क्रन्दन में निमग्न मते,
नयन पथके पथिक हों सदा॥९॥

भावार्थ—हे गुरुदेव! श्रील रूप गोस्वामी एवं श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुरके चरणकमलोंके एकान्त आनुगत्यमें ही भागवतीय परम्परा एवं सिद्धान्तोंकी रूपरेखाको अपने लेखन एवं वचनोंमें प्रस्तुत करनेके कारण आप उन दोनोंसे अभिन्न ही हैं। श्रील सनातन गोस्वामी एवं श्रील रघुनाथ दास गोस्वामीके हृद्गत भावोंको जानकर उन भावोंकी महिमाका प्रसार करनेके कारण आप विभु हैं। "**पाषाणे कुटिबो माथा, अनले पशिबो** अर्थात् [वैष्णव विरहमें] अपना सिर पत्थरपर पटक दूँ या आगमें प्रवेश कर जाऊँ?" तथा "**राधिका–गोवन्द बलि' काँदिबो उच्चः स्वरे। भिजिबे सकल अङ्ग नयनेर नीरे॥** अर्थात् मेरे जीवनमें ऐसा सुदिन कब आएगा, जब मैं 'राधिका–गोविन्द' का उच्चारण करते हुए उच्चःस्वरसे क्रन्दन करूँगा तथा नयनोंसे बहते हुए अश्रुओंसे मेरे देहके समस्त अङ्ग भीग जायेंगे।" इत्यादि श्रील नरोत्तम दास ठाकुरके अनेकानेक कीत्तनोंका श्रवण करके भाव–विभोर होकर क्रन्दनमें निमग्न हो जानेवाले आप हमारे नयन–पथके सदैव ही पथिक बने रहें॥९॥

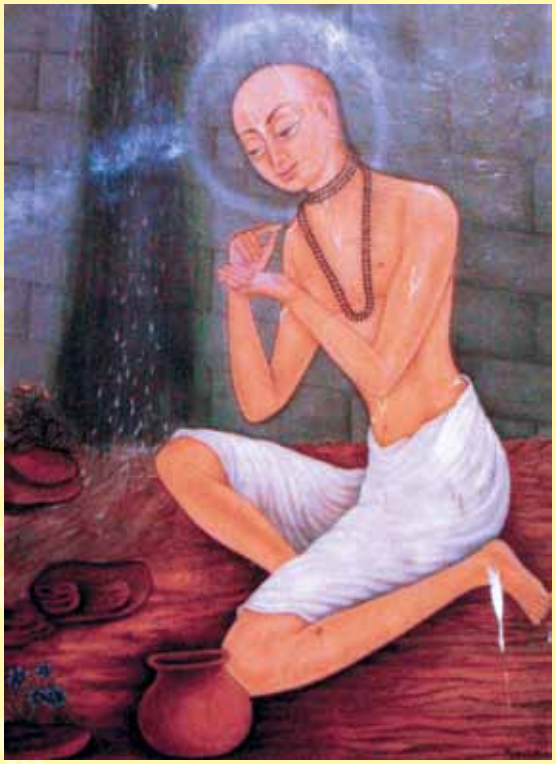

अनर्पितचरीं चिरात् परिचर्या–शिक्षा से,
गौराश्रितों को धन्य किया।
रूपानुग परम्परा के दिग्दर्शक,
नयन पथके पथिक हों सदा॥१०॥

भावार्थ—हे गुरुदेव! जिस सर्वोत्कृष्ट उन्नत–उज्जवल रसका दान जगत्को चिरकाल तक नहीं दिया गया था, श्रीराधिकाजीकी अङ्गकान्ति एवं भावको ग्रहण करके श्रीकृष्णने श्रीगौराङ्ग महाप्रभुके रूपमें उसी 'स्वभक्ति–श्री' अर्थात् श्रीमती राधाजीके आनुगत्यमें उनकी दासियोंके द्वारा अपरोक्ष रूपमें श्रीकृष्णकी परिचर्याकी शिक्षा प्रदान की है तथा श्रील रूप गोस्वामी एवं अनेकानेक रूपानुग वैष्णवोंने श्रीचैतन्य महाप्रभुकी जिस उपरोक्त मधुरिम धाराको अपने ग्रन्थोंमें प्रवाहित किया है, आपने उसीका पुनः पुनः स्मरण कराके, उन्हीं भावोंको हृदयमें सञ्चारित करके, कृष्णनामरस–परिचर्याकी परम्पराका दिग्दर्शन कराके तथा लुप्त होती उस श्रीरूपानुग धाराका संरक्षण

करके गौराश्रितोंको धन्यातिधन्य किया है। ऐसे आप हमारे नयन पथके सदैव ही पथिक बने रहें॥१०॥

सकल अपसिद्धान्तों को ध्वंस कर,
युगाचार्य पदवी से हुये विभूषित।
निडर, निर्भीक, निभ्रान्त प्रचारक,
नयन पथके पथिक हों सदा॥११॥

भावार्थ—हे गुरुदेव! वैष्णवनामधारी समाजमें सर्वत्र अपना जाल बिछा चुके अपसिद्धान्तोंको आपने 'प्रबन्ध–पञ्चकम्' इत्यादि ग्रन्थ लिखकर ध्वंस कर दिया है। श्रीहरिनामाश्रित विशुद्ध–रागमार्ग भक्तिरसका सम्पूर्ण जगत्में प्रचार करनेके कारण आपको 'युगाचार्य' पदसे अलंकृत किया गया है। आपने बृहत् सभाओंमें, बड़े–बड़े परिसरोंमें और यहाँ तक कि अपसिद्धान्तियों (भक्तिविरोधियों) के निज प्राङ्गणोंमें भी जा–जाकर निडरतापूर्वक, निर्भीकतापूर्वक और निभ्रान्त होकर भागवतधर्मका प्रचार किया है। आज भी आपकी ओजस्वी वाणी अपसिद्धान्तियोंके लिये ऊसर (बंजर) भूमिका कार्य कर रही है। ऐसे आप हमारे नयनपथके सदैव ही पथिक बने रहें॥११॥

हृदयस्पर्शी दृष्टि करती सम्मोहित,
मुक्तहास करता परमानन्दित।
रसवार्ता मधुरिमा से करते चमत्कृत,
नयन पथके पथिक हों सदा॥१२॥

भावार्थ—हे गुरुदेव! राधाभाव–विभावित उज्जवल गौरवर्णसे युक्त आपके मुखारविन्दपर कृष्ण रङ्गसे रञ्जित सुरमई (नीली) एवं स्निग्ध आँखोंसे झलकती आपकी हृदयस्पर्शी एवं त्रिकालदर्शी दृष्टि भोले–भाले साधारण जीवोंको ही नहीं अपितु बड़े–बड़े विद्वानोंको भी सम्मोहित कर लेती थी। श्रीव्रजमण्डल परिक्रमाके अन्तर्गत साकरी खोर आदि विभिन्न स्थानों एवं श्रीनवद्वीप धाम परिक्रमाके अन्तर्गत श्रीसमुद्रगढ़ नामक स्थानपर अपने गुरुभ्राताओं विशेष करके श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त त्रिविक्रम गोस्वामी महाराजके साथ हरिकथाके विभिन्न पहलुओंपर वाद–प्रतिवाद करते समय साकरी खोरमें श्रीमती राधाजीकी श्रीकृष्णसे सर्वोत्तमता तथा श्रीसमुद्रगढ़में राजा समुद्रसेनके भीमसेनसे श्रेष्ठ होनेको स्थापित करके आप हाथ–ताली बजाते हुए उन्मुक्त भावसे हँसकर अपनी शुभ्र (सफेद) दन्तावलीके दर्शन कराके एवं हँसीकी उच्चध्वनिको सुनाकर कठोरसे कठोर हृदयवाले व्यक्तियोंको भी परम आनन्दित करते थे। राससे श्रीकृष्णके अदृश्य होनेपर गोपियोंकी विरहोक्ति, कृष्णके व्रजसे मथुरा जानेपर व्रजवासियोंकी अवस्था तथा मथुरामें श्रीकृष्णकी अवस्था, विरहिणी राधाकी उत्कण्ठा एवं गोपियोंकी कृष्ण–तन्मयता इत्यादि रस–वार्त्ताओंकी मधुरिमाका वर्णनकर सबको चमत्कृत करनेवाले आप हमारे नयनपथके सदैव ही पथिक बने रहें॥१२॥

करुणा, वदान्यता वैशिष्ट्य से,
जन–जन था आकर्षक।
शुचि मन्दस्मित से किया पुलकित,
नयन पथके पथिक हों सदा॥१३॥

भावार्थ—हे गुरुदेव! आपकी करुणा और वदान्यता अपार एवं अगाध थी। आप अपनी महावदान्यताके कारण श्रीस्वरूप दामोदर, श्रीराय रामानन्द, श्रील रूप तथा श्रील सनातन गोस्वामी आदिके गोपनीय मनोभावोंका बड़े ही सुन्दर रूपसे वर्णन करके व्रजरस कथा–निधिको भर–भर हाथ लुटाते थे। आपके इन्हीं वैशिष्ट्योंसे लोग आपकी ओर आकर्षित होकर आपके द्वारा लुटायी जा रही सम्पत्तिको ग्रहण करके मत्त

हो जाते थे। उन्हें मत्त देख आपके श्रीसम्पन्न मुखपर जो पवित्र एवं मन्द मुस्कान छायी रहती थी वह स्त्री, पुरुष, आबाल–वृद्ध सभीको रोमाञ्चित कर देती थी। ऐसे आप हमारे नयनपथके सदैव पथिक बने रहें॥१३॥

अतिमर्त्य चरित्र सुष्ठु जीवितम्,
जैवधर्म सम्यक् रूपेण कथितम्।
परिकर वर्ग स्नेह समृद्ध कृतम्,
नयन पथके पथिक हों सदा॥१४॥

भावार्थ—हे गुरुदेव! आपका सम्पूर्ण जीवन–चरित्र अप्राकृत है। गौड़ीय–गुरुवर्गोंके द्वारा अनुमोदित श्रीहरिनाम–सङ्कीर्तनको ही श्रीचैतन्य महाप्रभुकी अभीप्सित रागमार्गीय भक्तिमें प्रवेश करनेके एकमात्र उपायके आचार एवं प्रचार द्वारा आपने अपने जीवनमें ही सर्वपूज्यता प्राप्त कर ली थी। आपने अपने श्रील गुरुदेवकी आज्ञासे श्रील भक्तिविनोद ठाकुर कृत जैवधर्मका सम्यक् हिन्दी अनुवादकर सम्पूर्ण जगतका परम मङ्गल किया है। अपने आश्रितजनोंको अप्राकृत स्नेहसे सिञ्चितकर रूपानुगधाराको अभिवृद्ध एवं समृद्ध करनेवाले आप हमारे नयनपथके सदैव ही पथिक बने रहें॥१४॥

अप्राप्य ग्रंथों को प्रकाशित कर,
गौर प्रियजनों को संतुष्ट किया।
प्रेम–सम्पद् में अवगाहन कराने वाले,
नयन पथके पथिक हों सदा॥१५॥

भावार्थ—हे गुरुदेव! गौड़ीय ग्रन्थरत्नावलीके बहुतसे ऐसे ग्रन्थ जो प्रकाशनकी निरन्तरताके अभाववशतः अप्राप्य हो गये थे अथवा मात्र संस्कृत या बंगला भाषामें ही उपलब्ध थे अथवा जिन ग्रन्थोंके संस्पर्शसे हिन्दी जगत अछूता था। ऐसे उज्ज्वल नीलमणि, श्रीबृहद्भागवतामृतम्, श्रीरासपञ्चाध्यायी, श्रीगीत–गोविन्द, चार वैष्णवाचार्य, श्रीभागवतार्कमरीचिमाला, श्रीगौड़ीय–कण्ठहार, ब्रह्म–संहिता, प्रेम–सम्पुट, चमत्कार–चन्द्रिका, उत्कलिकावल्लरि इत्यादि ग्रन्थोंको प्रकाशितकर आपने श्रीगौराङ्ग महाप्रभुको ही अपने प्राण माननेवाले भक्तोंके हृदयमें सन्तोषका विधान किया अथवा गौरप्रिय भागवत् रूपानुग परम्पराके आचार्योंको महत्–सुख प्रदान किया। इस प्रकार आपने ग्रन्थोंके माध्यमसे कृष्णप्रेमरूपी महान् सम्पदाके समुद्र में लक्ष–लक्ष जनोंको अवगाहन कराया है—ऐसे आप हमारे नयन–पथके सदैव पथिक बने रहें॥१५॥

ब्रह्मसूत्र की गोविन्दतोषणी वृत्ति से,
गौर सिद्धान्त को परिपुष्ट किया।
नीली आँखों से करुणा बरसतीं,
नयन पथके पथिक हों सदा॥१६॥

भावार्थ—हे गुरुदेव! प्रकटलीलाके अन्तिम दिनोंमें आपने श्रीमद् व्यासदेव रचित ब्रह्मसूत्रकी गोविन्दतोषणी वृत्ति[१] के द्वारा श्रीगौराङ्ग महाप्रभुके सार्वभौम अचिन्त्य–भेदाभेद सिद्धान्तको सहज–सरल भावसे संरक्षित एवं परिपुष्ट किया है। हे कालजयी! वृद्धावस्थामें भी रात–दिन अपनी नीली आँखोंको ग्रन्थकार्यमें नियुक्त रखकर ग्रन्थके माध्यमसे वर्त्तमान एवं भावी जगतवासियोंके मङ्गलकी कामना करना अपार करुणा वर्षण नहीं तो और क्या है! ऐसे आप हमारे नयनपथके सदैव ही पथिक बने रहें॥१६॥

१ श्रील गुरुदेवके द्वारा रचित ब्रह्मसूत्रकी प्रकाशनाधीन हिन्दी टीका

हिन्दी ग्रन्थागार के हे भास्कर,
सदाचार आदर्श के हे मणि।
भक्ति प्रचार केन्द्रों के स्थापक,
नयन पथके पथिक हों सदा॥१७॥

भावार्थ—हे गुरुदेव! सर्वशास्त्र निष्णात, आप भक्तजनोंके कल्याणकी अभिलाषासे हिन्दी गौड़ीय ग्रन्थागारको पूर्ण करते रहे। मनुष्योंको जन्म–मरणके चक्रसे विनिर्मुक्त करनेकी वाञ्छासे आपने भास्करके समान अज्ञान–अन्धकारको दूर करनेके लिये अनेक ग्रन्थोंका प्रकाशन किया। स्वयंके आचरणके द्वारा दूसरोंको साधन–भजनमय जीवनकी कला सिखानेके कारण आप गौड़ीय–वैष्णवोंके आदर्शमणि बन गये हैं। जैसे पारसमणिका स्पर्श करनेसे लोहा भी सोना बन जाता है, उसी प्रकार आपसे सद्–आचरणकी शिक्षा प्राप्त करके निम्नकोटिके संस्कारोंसे युक्त व्यक्ति भी स्वयंको कृतकृतार्थ कर रहे हैं। आपमें वैराग्य, कर्मठता और सौहार्द तो था ही, आपकी रात–दिन भजन–परायणता भी सभी निष्कपट भजन–प्रयासियोंके लिये प्रेरक बन गई है। देश–विदेशमें आपने शुद्धभक्तिके प्रचारके लिये विभिन्न केन्द्रोंकी स्थापना की है। ऐसे आप हमारे नयनपथके सदैव ही पथिक बने रहें॥१७॥

परम निगूढ़तम भावों को भी,
सहज सरल बोधगम्य किया।
राधा–दास्य में लोभ जगाने वाले,
नयन पथके पथिक हों सदा॥१८॥

भावार्थ—हे गुरुदेव! परमोज्ज्वल प्रेम–वैचित्र्य, किलकिञ्चित, मोहन–मादन आदि निगूढ़तम् (अत्यधिक गूढ़) भावोंकी आप ऐसी व्याख्या करते थे कि वे सहज, सरल भावसे सभीको बोधगम्य हो जाते थे। आप अपने प्रत्येक वचनके माध्यमसे वृन्दावेश्वरी श्रीराधाजीकी दासी होनेका अर्थात् राधा–दास्यका उत्तरोत्तर लोभ जागृत

करते थे। स्वाभाविकी रूपानुगा प्रीतिको प्रदान करनेवाले आप हमारे नयन पथके सदैव पथिक बने रहें॥१८॥

©Vasudeva Kṛṣṇa dāsa

रागानुग भक्ति की प्रतिमूर्ति,
राधापरिकर ब्रजजन थे आप।
भजनानन्द में मत्त मधुप सम,
नयन पथके पथिक हों सदा॥१९॥

भावार्थ—हे गुरुदेव! इष्ट वस्तुमें बलवती तृष्णाका होना रागका लक्षण है। इष्टमें परम आवेश रागात्मिका भक्ति कहलाता है। रागात्मिका भक्तिका अनुसरण रागानुगा भक्ति कहलाता है। रागात्मिक होनेपर भी इस जगत्के साधक–जीवोंके लिए आप इसी रागानुगा भक्तिके मूर्तिमान स्वरूप थे। आप मात्र व्रजवासी ही नहीं, अपितु राधाजीके परिकर व्रजजनोंमें से एक हैं। जड़ आसक्ति रहित, अप्राकृत वैराग्य साम्राज्यके सिंहासनारूढ़, भक्ति–रसमें प्लावित आप भजनानन्द–मकरन्दमें मधुकरके समान उन्मत्त रहते थे। ऐसे आप हमारे नयनपथके सदैव ही पथिक बने रहें॥१९॥

©Śyāmarāṇī dāsī

व्रज रस–सारामृतके विधु,
विश्व परिभ्रमण किया अनेक बार।
गौर–माधुरी के विस्तारक,
नयन पथके पथिक हों सदा॥२०॥

भावार्थ—'व्रजरस सार है', 'कृष्ण–रस भाविता मति', व्रजवासिजनोंमें इस रसामृतकी पूर्णता है, क्योंकि सर्वेश्वर, सर्वशक्तिमान, अनन्त ब्रह्माण्ड नायक, अखिलेश्वर भगवान् श्रीकृष्ण ही उनके परम आत्मीय, प्राणनाथ, प्रियतम और हृदयेश्वर हैं। हे गुरुदेव! इसी भाव–चन्द्रिकाके विधु (चन्द्र) बनकर आपने विश्व गगनमें सर्वत्र ही परिभ्रमण किया और इस प्रकारसे विश्ववासियोंके आत्म–कल्याणके लिये आनन्दामृतसे परिपूर्ण गौर–माधुरीका वितरण किया। ऐसे आप हमारे नयनपथके सदैव ही पथिक बने रहें॥२०॥

सुकृतिशाली जन हैं जो जग में,
व्रज प्रेम संदेश उन्हें दिया।
व्रजवासियों के परम सुहृद,
नयन पथके पथिक हों सदा॥२१॥

भावार्थ—हे गुरुदेव! जिन्होंने हंसके समान नीर–क्षीरके विवेक द्वारा आत्मा–अनात्मा एवं हेय–उपादेयका विश्लेषणकर भगवान्के चरणारविन्दोंमें मन एवं बुद्धिको समर्पित कर दिया है, ऐसे सुकृतिशाली जनोंको आपने स्नेहसिक्त मधुर–स्वरमें सर्वोत्कृष्ट व्रजप्रेमका सन्देश देकर विरहमें रोदन करना सिखलाया है। आप व्रजवासियों के आराध्य, परम सुहृद एवं परम प्रिय हैं। ऐसे आप हमारे नयनपथके सदैव ही पथिक बने रहें॥२१॥

गौर–विधुर जनों को आह्लादितकर,
प्रेम–भूमि में उन्हें आश्रय दिया।
रूप रति के परम प्रिय,
नयन पथके पथिक हों सदा॥२२॥

भावार्थ—हे गुरुदेव! श्रीगौरसुन्दरके युगलचरण ही जिनके एकमात्र धन–सम्पत्ति स्वरूप हैं और जो 'हा गौराङ्ग' पुकारते हुए निरन्तर अश्रु प्रवाहित करते रहते हैं, ऐसे विरह–विदग्ध जनोंको आपने गौरसुन्दरकी मधुर–कथाओंका श्रवण कराके आह्लादित किया। उनके हृदयोंमें व्रजकी माधुरीका सञ्चार कराके उन्हें अद्भुत प्रेम–महिमाका पाठ सिखाकर गम्भीराकी विप्रलम्भभाव–भूमिका आश्रय दिया। श्रीराधामाधवके अभिसार इत्यादि सेवाओं द्वारा विनोद करना ही जिनका

गम्भीरा मन्दिर

सर्वाभीष्ट कार्य है, ऐसी श्रीरूप, श्रीरतिके आप परम प्रिय हैं, क्योंकि आप भी इसी विनोदन कार्यमें बहुत अधिक स्पृहा रखते हैं। ऐसे आप हमारे नयन–पथके सदैव ही पथिक बने रहें॥२२॥

नित्यसिद्ध भावना से परिपूरित,
मञ्जरी भावमय अश्रुपूरित।
उज्ज्वल कान्ति से विलसित,
नयन पथके पथिक हों सदा॥२३॥

भावार्थ–हे गुरुदेव! नित्यसिद्ध भावनाओंमें निमग्न आप स्वयं परमोज्ज्वल प्रेमकी पराकाष्ठारूपी पूर्णतासे विभूषित थे। अति–निगूढ़ निकुञ्ज–परिचर्याके लिये अपरिहार्य मञ्जरी–भावसे आपका रोम–रोम पुलकित रहता था। इन्हीं भावोंमें निमग्न रहनेके कारण आपकी आँखोंसे अश्रु छलछलाते थे। शृङ्गारिक–उज्ज्वल–कान्ति आपके मुखमण्डलपर सदा ही शोभायमान रहती थी। ऐसे आप हमारे नयनपथके सदैव ही पथिक बने रहें॥२३॥

विरहोन्मादके रसास्वादक,
राधा मान प्रणयके आराधक।
ललिता मान प्रणयके अभिव्यञ्जक,
नयन पथके पथिक हों सदा॥२४॥

भावार्थ–हे गुरुदेव! शृङ्गार–रीतिकी परम्परामें जो विरहास्वादन वैष्णवोंका परम धन है, आप उस विरह–रसका आस्वादन करते हुए सदैव उन्मत्त रहते थे। मानिनी राधा, कृष्णको प्रणयकी चमत्कारिताका आस्वादन करानेके लिये क्षण–क्षण मानकर बैठती हैं–आप प्रणय–चमत्कारिताकी इसी चरमोत्कर्षताके आराधक हैं। ललिताजी राधाजीकी मान–शिक्षिका हैं। आप ललिताजीके मान–प्रणय–शिक्षणकी–"अरे! वाह कृष्ण! आप तो बड़े सत्यवादी, सरल और विशुद्ध

प्रणयी हैं"—बड़ी ही सुन्दर अभिव्यञ्जना करते थे। ऐसे आप हमारे नयन–पथके सदैव ही पथिक बने रहें॥२४॥

उज्जवल रसाख्यानमें निपुण,
भक्तिरसामृत धारामें प्रवण।
कुञ्ज युगल केलि रमण,
नयन पथके पथिक हों सदा॥२५॥

भावार्थ—हे गुरुदेव! समस्त रसोंमें जो सर्वश्रेष्ठ रस है, उस उज्ज्वल रस अर्थात् राधाकृष्णके शृङ्गार–रसकी गम्भीरताका वर्णन करनेमें आप अतिनिपुण थे। गौड़ीय–प्राण–धन रूप इस उज्ज्वल भक्तिरस–पीयूषमें प्रवीण आपने इसकी ऐसी वक्तृता–धारा प्रवाहित की कि समस्त विश्व मन्त्रमुग्ध रह गया। भला ऐसा हो भी क्यों न? आप नित्य सेवाकुञ्जके अन्तर्गत श्रीविनोदकुञ्जमें विराजित श्रीश्रीराधा–विनोदविहारीको अपनी गुरुरूपा सखी विनोद मञ्जरीके आनुगत्यमें रति–क्रीड़ाका सुख पहुँचानेवाली रमण–मञ्जरी जो हैं। ऐसे आप हमारे नयनपथके सदैव ही पथिक बने रहें॥२५॥

सर्ववाञ्छासिद्धिस्वरूप हे,
हरिसङ्कीर्तन आनन्दाम्बुधिवर्धक।
ऊर्ध्व बाहु से करें सब जय जय कार,
नयन पथके पथिक हों सदा॥२६॥

भावार्थ—हे गुरुदेव! आपके श्रीचरणकमलोंमें रति ही एकमात्र सर्वश्रेष्ठ गति है और इसीसे समस्त अभिलाषाएँ पूर्ण हो जाती हैं। इसलिये आपको सर्ववाञ्छा सिद्धिस्वरूप कहकर भक्तजन आपकी महिमा गान करते हैं। आप श्रीमुकुन्द–प्रेष्ठ हैं, क्योंकि आप श्रीहरिके नाम–सङ्कीर्तनरूपी आनन्द–सागरका वर्द्धन करनेवाले हैं। वस्तुतः शास्त्रोंमें आप जैसे आचार्यको स्वयं श्रीहरि ही कहा गया है। हम सब भक्तजन अपनी दोनों भुजाओंको ऊपर उठाकर आपकी जय–जयकार कर रहे हैं। हे प्रभो! हे देव! आपकी जितनी भी जय–जयकारकी जाये, उतनी कम है। आपकी महिमाका जितना भी वर्णन किया जाये, उतना ही कम है। आपको नयनपथके समक्ष नहीं पाकर हृदय विरह–विदग्धतामें ही निमग्न रहता है। आपसे बारम्बार यही निवेदन है कि आप हमारे नयनपथके सदैव ही पथिक बने रहें। आपकी जय हो, जय हो, जय हो॥२६॥

वास्तविक मिलन और विच्छेद—दोनों ही सेवा-भावनासे उत्पन्न

—श्रीश्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराज

[श्रीनवद्वीपधाम परिक्रमाके अन्तर्गत १/३/१९६१, श्रीचैतन्य मठ, मायापुरमें प्रदत्त वक्तृताके कुछेक अंश]

भक्ति-सिद्धान्त—श्रील प्रभुपादकी प्रतिमूर्त्ति

[श्रीनवद्वीप परिक्रमाके अन्तर्गत श्रील प्रभुपाद भक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी ठाकुरकी समाधिके समक्ष उपस्थित होनेपर श्रीश्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराजने वक्तृता प्रदान करते हुए कहा कि] हम जिस स्थानपर उपस्थित हुए हैं, यह श्रील प्रभुपादकी समाधि है। वे जगतमें 'भक्तिसिद्धान्त सरस्वती' के नामसे प्रसिद्ध हैं। सिद्धान्त कहनेपर भक्तिके अतिरिक्त अन्यान्य सिद्धान्त जैसे—कुसिद्धान्त, अपसिद्धान्त, हेयसिद्धान्त, आंशिक-सिद्धान्त इत्यादिको भी समझा जाता है। किन्तु वेद-पुराण-उपनिषद आदिका प्रतिपाद्य जो भक्ति-सिद्धान्त हैं, वे उन्हीं (श्रील प्रभुपाद) की प्रतिमूर्त्ति हैं।

श्रील प्रभुपाद समस्त आचार्योंके 'मुकुटमणि' थे। यह पारिभाषिक, sentimental अथवा भावुकताकी बात नहीं है, अपितु यह बात पारमार्थिक युक्तिके द्वारा ही प्रतिष्ठित है। पाश्चात्य ऐतिहासिकोंकी प्राकृत युक्तिके दृष्टिकोणसे देखनेपर भी इन महापुरुष जैसा धर्मबल, क्रिया–नैपुण्य, निरपेक्षता और निर्भीकता आदि इस जगतमें कहीं नहीं दिखलायी पड़ता।

कर्ममार्गमें लिप्त व्यक्तिके लिये श्रीगुरु–वाणीके तात्पर्यकी उपलब्धि असम्भव

महापुरुष श्रील प्रभुपाद स्वयं वाणीरूपा 'सरस्वती' थे। उन्होंने जगतमें जो पारमार्थिक विप्लव (हलचल) प्रकाशित किया है, उसीसे ही जाना जाता है कि वे भगवान्‌के द्वारा शक्त्याविष्ट पुरुष थे। आज उनकी वाणी ही हमारा एकमात्र सहारा (आश्रय) है। कर्ममार्गमें लिप्त रहनेपर उस वाणीके तात्पर्यकी उपलब्धि नहीं की जा सकती। इसीलिए निखिल शास्त्रशिरोमणि श्रीमद्भागवत् (११/२०/९) में कहा गया है–

''तावत् कर्माणि कुर्वीत न निर्विद्येत यावता।
मत्कथा–श्रवणादौ वा श्रद्धा यावन्न जायते॥''

[अर्थात् जबतक कर्म करते–करते कर्मके दुःखमय होनेका ज्ञान उत्पन्न होनेके कारण उन कर्मोंसे विरक्ति अथवा मेरी कथाओंके श्रवणमें श्रद्धा उत्पन्न नहीं हो जाती, तबतक नित्य–नैमित्तिक कर्मोंका आचरण करना चाहिये।]

''सन्त एवास्य छिन्दन्ति'' नामक भागवतीय वाणीके मूर्त्तिरूपमें अवतीर्ण

जबतक हम कर्ममार्गमें विचरण करेंगे, तबतक भक्तिमार्गमें भगवान्‌की कथामें हमारी श्रद्धा उदित नहीं होगी। किन्तु यहाँ **''सन्त एवास्य छिन्दन्ति मनोव्यासङ्गं उक्तिभिः''** (श्रीमद्भा० ११/२६/२६)

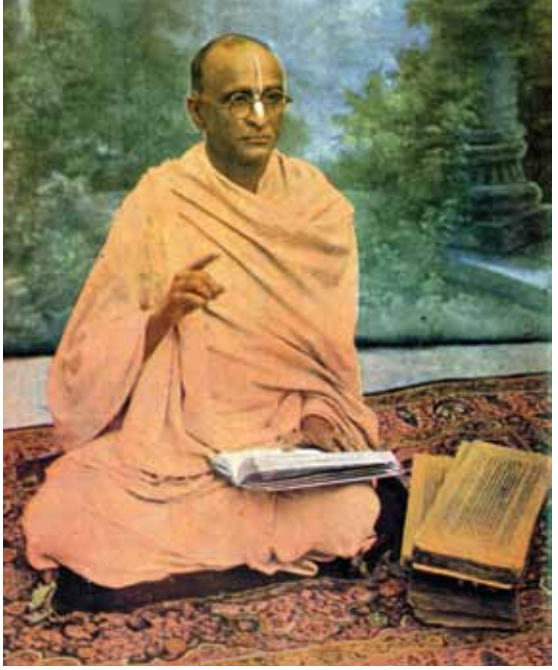

अर्थात् साधु ही उपदेश वचनके द्वारा जीवोंके मनकी विरुद्ध आसक्तिका विनाश किया करते हैं–इस भागवत–वाणीके मूर्त्तिमानरूपमें अवतीर्ण होकर श्रील प्रभुपादने धर्मजगतमें एक विप्लव (हलचल) ला दिया है।

श्रील प्रभुपाद–सत्यके निर्भीक प्रचारक

श्रील प्रभुपादने जगतके लोगोंकी प्राकृत रुचिके अनुकूल कार्य नहीं करके, रोगीके साथ मीठी–मीठी बातें नहीं करके तथा उसके दूषित घावपर हाथ नहीं फेरकर direct operation किया है। ये तेजस्वी आचार्य–केशरी सत्यके निर्भीक प्रचारक थे। असत्यके प्रति उन्होंने चिरदिन non-cooperation किया है।

कीर्त्तनके प्रभावसे ही स्मरण सम्भव

श्रील प्रभुपादने हमें बतलाया है–''कीर्त्तन प्रभावे स्मरण हइबे, सेकाले भजन निर्जन सम्भव। अर्थात् कीर्तनके प्रभावसे ही स्मरण होगा और उसी समय निर्जन–भजन सम्भव है।'' वृन्दावन, श्रीक्षेत्र (श्रीजगन्नाथ पुरी) आदि स्थानोंपर कृत्रिम स्मरण करनेवालोंका विशेष प्रादुर्भाव देखा जाता है। किन्तु श्रील प्रभुपादने 'कृत्रिम लीला–स्मरण' आदि शास्त्र–विरोधी कार्यको कभी भी

प्रश्रय नहीं दिया। कीर्त्तनको छोड़कर भक्तिके किसी भी अङ्गका याजन सुष्ठु नहीं होता। यद्यप्यन्या भक्ति कलौ कर्त्तव्या, तदा कीर्त्तनाख्य–भक्ति–संयोगेनैव अर्थात् यद्यपि भक्तिके अन्यान्य अङ्गोंका पालन करना भी इस कलियुगमें कर्त्तव्य है, तथापि वे समस्त अङ्ग–समूह कीर्तनाख्य भक्तिके संयोगसे ही करने चाहिए"—यही गोस्वामियोंका सिद्धान्त है। श्रीप्रह्लाद महाराजने स्मरणके प्रभावसे भगवानको प्राप्त किया है। किन्तु ''श्रवणं कीर्त्तनम् स्मरणम्'' श्लोकके द्वारा देखा जाता है कि उन्होंने कीर्त्तनके प्रभावसे

होनेवाले स्मरणको ही प्राधान्य दिया है। श्रील प्रभुपादने भी आजीवनकाल अपने आचार–प्रचारके द्वारा इसी विचारको ही स्थापित किया है।

हरिकथा–प्रचार करना ही वास्तविक निर्जन भजन

श्रील प्रभुपादने कभी भी 'निर्जन भजन' को प्रश्रय नहीं दिया। 'निर्जन भजन' का अर्थ—दुःसङ्ग परित्याग करके भजन करना है। हरिकथा–प्रचार करना ही वास्तविक निर्जन भजन है। इसीलिए उन्होंने कहा है,—''कीर्त्तन प्रभावे स्मरण हइबे, सेकाले भजन निर्जन सम्भव॥" इस वचनका अर्थ यह नहीं है कि कीर्त्तन करते–करते स्मरण करनेकी क्षमता प्राप्त होनेपर उस समय ही निर्जन भजनका अधिकार प्राप्त होता है—नहीं, ऐसा नहीं। जिस

मर्त्य बुद्धिसे युक्त होकर श्रील प्रभुपादके द्वारा प्रतिष्ठित मठ–मन्दिरमें रहकर गुरुसेवाका अभिनय—'आनुकरणिक' भक्ति है। किन्तु दूर रहकर भी श्रील प्रभुपादके प्रीति–विधान करनेवाले कार्योंमें निमग्न रहना—'आनुसरणिक' भक्ति है।

समय कीर्त्तन होता है, उसी समय ही कीर्त्तनके माध्यमसे स्मरण होता है एवं वही निर्जन भजन है—"**सेकाले भजन निर्जन सम्भव** अर्थात् कीर्तन करते समय ही निर्जन भजन होता है।" अतः हरिकथा–प्रचार करना ही वास्तविक निर्जन भजन है। हरिकथाका श्रवण–कीर्त्तन करनेपर ही वास्तविक भगवद्भजन सम्भवपर है।

आनुकरणिक और आनुसरणिक भक्ति

आन्तरिकतासे रहित बाह्य भक्तिके आकारको कभी भी 'भक्ति' नहीं कहा जा सकता। श्रील प्रभुपादने इस प्रकारकी भक्तिको 'आनुकरणिक' भक्ति कहा है। किन्तु वास्तविक भक्त—आनुसरणिक होते हैं। बाह्यदृष्टिसे जो भक्तिके समान दीखता है, वह 'अनुकरण' है, किन्तु 'अनुसरण' का अर्थ ठीक इसके विपरीत है अर्थात् सेव्यकी प्रीति ही मूल है, अनुसरण केवल अनुष्ठान मात्र नहीं है। मर्त्य बुद्धिसे युक्त होकर श्रील प्रभुपादके द्वारा प्रतिष्ठित मठ–मन्दिरमें रहकर गुरुसेवाका अभिनय—'आनुकरणिक' भक्ति है। किन्तु दूर रहकर भी श्रील प्रभुपादके प्रीति–विधान करनेवाले कार्योंमें निमग्न रहना—'आनुसरणिक' भक्ति है। उदाहरण स्वरूप कहा जा सकता है—एक पिताकी दो सन्तान हैं। ज्येष्ठ पुत्र बहुत दूरमें काम करके अर्थ उपार्जन करता है एवं प्रत्येक मास वह पिता–माताके नामपर नियमित राशि भेजता है। छोटा पुत्र पिता–माताके पास रहकर निरन्तर उनसे अभद्र भाषामें बात (अर्थात् गाली–गलौच) करता है तथा उनकी इच्छाके विरुद्ध कार्य करता है। इससे पता चलता है कि

जो पुत्र बहुत दूर रहता है, वही वास्तविक सेवक है। इसके द्वारा प्रमाणित हुआ कि निकटवर्त्ती व्यक्ति 'आनुकरणिक' एवं दूरवर्त्ती व्यक्ति 'आनुसरणिक' है। इस विषयको नहीं समझ पानेपर अप्राकृत–तत्त्वको नहीं समझा जा सकता। प्राकृत और अप्राकृत–तत्त्वके भेदको समझना साधारण व्यक्तियोंकी धारणासे बाहरकी बात है। श्रील प्रभुपादकी विचार–धाराका अनुसरण करनेपर यह जाना जाता है कि प्राकृत–वस्तु कभी भी अप्राकृत नहीं बन सकती। शुद्धभक्तके द्वारा निवेदित सभी वस्तुएँ ही अप्राकृत हैं।

हम भोगीके साथ मिलित होकर अथवा त्यागीके साथ सम्बन्ध स्थापनकर गुरुसेवासे वञ्चित नहीं होंगे।

दैव–वर्णाश्रम–धर्मको प्रतिष्ठित करनेके लिये भगवान्‌के द्वारा प्रेरित पुरुष

गोस्वामिगण विशुद्ध वर्णाश्रम–धर्मका व्यापकरूपसे अनुष्ठान नहीं कर पाये। किन्तु उस दैव वर्णाश्रम–धर्मको श्रील प्रभुपादने अकेले ही जगतमें प्रतिष्ठित किया है। वे समाजके उद्धारकर्त्ता और संस्कारकर्त्ता हैं। हम जिसका आचरण करनेमें असमर्थ हैं, इन महापुरुषने वैसा आचरणकर विश्ववासियोंको शिक्षा प्रदान की है। समग्र ब्राह्मण समाजका इन्होंने ही उद्धार किया है। इन्होंने ही जागतिक ब्राह्मणसमाजकी कर्मजड़ता, अनुदारता, कुसंस्कार आदिको विमर्दित करके, "ब्राह्मण किसे कहते हैं?"–इसका सत्य–सिद्धान्त जगतमें प्रचार किया है। मेदिनीपुर जिलेका धर्म–महासम्मेलन आजतक भी इस बातकी साक्षी दे रहा है। श्रील भक्तिविनोद ठाकुरने इन महापुरुषके सम्बन्धमें कहा था–''सरस्वती जगतमें दैव–वर्णाश्रम–धर्मको प्रतिष्ठित करनेके लिये भगवान्‌के द्वारा प्रेरित पुरुष हैं।'' सम्पूर्ण विश्वने इसे देखा है।

आज इन महापुरुषके निकट हमारी प्रार्थना है–हे गुरुपादपद्म! हमारे हृदयमें शक्ति–सञ्चार कीजिये, जिससे हम भगवान्‌के चरणकमलों और आपके चरणकमलोंमें आश्रय प्राप्त कर सकें।

मिलन और विच्छेदके एक ही तात्पर्यपर होनेका वास्तविक अर्थ

[श्रील गौरकिशोर दास बाबाजी महाराजकी समाधि–स्थलीपर जानेसे पूर्व श्रीचैतन्य मठके नाट्य–मन्दिरमें वक्तृता देते समय वक्ता महोदय श्रील भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराजने कहा–]हम सभी मिलनके पक्षपाती हैं। मिलनके क्षेत्रमें कौन किसके साथ मिलित होगा–इसका विचार करनेकी आवश्यकता है। दूर अवस्थित नहीं रहनेपर मिलनका कोई प्रसङ्ग ही नहीं उठता। ऐसा कहनेपर दूरमें अवस्थित तत्त्वोंके एकीकरणकी चेष्टा नहीं करनी चाहिए–अन्यथा ऐसी चेष्टा मायावादियोंकी चेष्टाके समान हो जायेगी। 'मिलन' शब्दका तात्पर्य इस प्रकार नहीं है। यदि विच्छेद और मिलन एक ही तात्पर्यपर नहीं हों, तो भोगी और त्यागीके सम्मेलनकी चेष्टाकी भाँति वह अपकार्यमें परिणत हो जायेगा। श्रील प्रभुपादकी अन्तिम शिक्षामें हमने सुना है–Love and rupture अर्थात् प्रीति और विच्छेद एक ही तात्पर्यपर हैं। अर्थात् प्रीति जिस उद्देश्यसे उत्पन्न होती है, विच्छेद भी उसी उद्देश्यसे उत्पन्न होता है, इसे नहीं समझ पानेके कारण विच्छेदके प्रति अवाञ्छनीय हेयज्ञान करना अपराध है। ध्यान रखना चाहिए कि हम इस प्रकारके अपराधसे कभी भी पतित न हों। मिलन और विच्छेद–ये दोनों तत्त्व विरुद्धभावको प्रकाशित करनेपर भी एक ही स्थानमें अवस्थित हैं। जैसे एक वृत्तकी परिधिपर अवस्थित प्रत्येक बिन्दु ही युगपत्

उस वृत्तका आदि और अन्त है। पुनः देखा जाता है कि परिधिके एक बिन्दुसे अग्रसर होते रहनेपर अन्तिम बिन्दु आदि बिन्दुके साथ युक्त होकर युगल–सेवाको प्रकाशित करता है। अतः Love and rupture अथवा प्रीति और विरह एक ही स्थानपर अवस्थित रहकर युगल–सेवाकी ही उज्ज्वलताका विधान करते हैं। जिस स्थानपर मिलन भोगका एवं विच्छेद त्यागका प्रतीक होता है, उस स्थानपर युगल–सेवामें बाधा उत्पन्न होती है। हम भोगीके साथ मिलित होकर अथवा त्यागीके साथ सम्बन्ध स्थापनकर गुरुसेवासे वञ्चित नहीं होंगे। हम श्रीअनङ्ग मञ्जरीके आनुगत्यमें श्रीगान्धर्विका–गिरिधारीकी युगलसेवामें नियुक्त रहेंगे।

['मिलन और विच्छेदके एक ही तात्पर्यपर होनेका वास्तविक अर्थ' नामक शीर्षकके अन्तर्गत श्रील भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराजका अभिप्राय यह है—"मैंने परमहंस श्रील बाबाजी महाराजके निकट श्रीधाम मायापुरसे दूर श्रीधाम नवद्वीपमें अवस्थान करना अङ्गीकार किया है, इसलिए अब उनके साथ मिलनका प्रसङ्ग आया है। 'दूरमें अवस्थान' कहनेसे यहाँ सम्बन्ध–रहित अवस्था नहीं है। 'दूरमें अवस्थित तत्त्व समूह' अर्थात् कपट, भण्ड, पाषण्ड आदिको, दूरमें अवस्थित विरहकातर मेरे साथ एकाकार नहीं करना चाहिए—अन्यथा वह मायावादियोंकी भाँति 'सभी बह्म हैं' के इस विचारसे 'मूड़ी–मिश्री' को एक करना हो जायेगा। श्रील बाबाजी महाराजके साथ मेरा 'मिलन' और 'विच्छेद' एक ही तात्पर्यपर है। यह मिलन जिस प्रकार बाबाजी महाराजको भोग करनेके विचारसे उत्पन्न नहीं है, उसी प्रकार 'विच्छेद' भी उन्हें त्याग करनेके विचारसे उत्पन्न नहीं है। मेरा यह मिलन और विच्छेद—दोनों ही विचार उनके प्रति सेवा–भावनासे उत्पन्न हैं। अतः इस विच्छेदको हेय मानना उचित नहीं है। गौड़ीय वैष्णव साहित्यमें—मिलन और विच्छेद, Love and rupture इसी प्रकार एक ही तात्पर्यपर हैं—अर्थात् दोनों ही सेवाभावना–परक हैं।]

राधाकुण्डके तटपर ही श्रील गुरुपादपद्मका स्थान

[श्रील गौरकिशोर दास बाबाजी महाराजकी समाधिके समक्ष उपस्थित होनेपर वक्ता महोदय श्रील भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराजने वक्तृता देते हुए कहा]—हम जिस स्थानपर आकर उपस्थित हुए हैं, इस स्थानपर व्रजपत्तनके अन्तर्गत श्रील गौरकिशोर दास बाबाजी महाराजकी समाधि है। हमारे सम्मुख श्रील सरस्वती

गौड़ीय वैष्णव साहित्यमें—मिलन और विच्छेद—दोनों ही सेवाभावना–परक हैं।

ठाकुरके द्वारा प्रतिष्ठित श्रीराधाकुण्ड है। 'राधाकुण्डके तटपर ही श्रीगुरुपादपद्मका स्थान है'—इसीको प्रदर्शित करानेके लिये ही श्रील प्रभुपादके आदेशसे श्रील गौरकिशोर दास बाबाजी महाराजकी समाधि यमुनाके[१] तटसे लाकर यहाँ प्रतिष्ठित की गयी है। श्रील प्रभुपादने कृपा करके मुझ अधमको इस कार्यके लिये सेवकरूपमें नियुक्त किया था।

मुक्त-पुरुषके द्वारा प्रकाशित मूर्त्ति ही 'श्रीविग्रह'

जिनके समाधि-मन्दिरके सम्मुख हम उपस्थित हुए हैं, उनका ही श्रीविग्रह हम मन्दिरमें प्रतिष्ठित देख पा रहे हैं। हमें मनमें यह विचार रखना होगा कि मूर्त्ति-मात्र ही श्रीविग्रह नहीं है। केवल वही 'श्रीविग्रह' है, जो मुक्तपुरुषके द्वारा प्रकाशित होता है—उसी श्रीविग्रहके निकट ही हमें अपना सबकुछ समर्पण करना होगा।

श्रील बाबाजी महाराजके द्वारा प्रदत्त आशीर्वचनका स्मरण

वैष्णव किसी प्राकृत मूर्त्तिके पुजारी नहीं हैं। जिस विग्रहका हम यहाँ दर्शन कर रहे हैं, यही उनकी प्रकट-लीलाका विग्रह है। इस अधमने उनके साक्षात् प्रकटित विग्रहके दर्शन करनेका सौभाग्य प्राप्त किया था। जब उन्होंने दर्शन दिया था, तब उन्होंने इस अधमको प्रचुर आशीर्वाद प्रदान किया था। अब उसका स्मरण करके मेरा हृदय उच्छलित हो रहा है। उन्होंने कहा था—''आपकी समस्त विपत्तियोंको मैंने ग्रहण कर लिया है, आप निश्चिन्त होकर भजन कीजिये।'' [यह कहते-कहते परम गुरुदेवका कण्ठ रुद्ध हो गया तथा वे क्रन्दन करने लगे]।

बाहरी रूपसे निरक्षरता रूपी वञ्चनाका आचरण करनेवाले बाबाजी महाराज

बाह्यदृष्टिसे श्रील बाबाजी महाराज एक निरक्षर व्यक्ति थे। दूसरी ओर श्रील प्रभुपाद पण्डित-कुल-शिरोमणि थे। इसीलिए वे 'अज्ञ-रुढ़ि' अथवा 'साधारण-रुढ़ि'-विचारसे चालित न होकर सर्वत्र सर्वदा 'विद्वत्रुढ़ि'—विचारका ही दर्शन प्राप्त करते थे। इसीलिये उन्होंने बाबाजी महाराजकी बाह्य निरक्षरतारूपी वञ्चनाके आचरणको पार कर बाबाजी महाराजकी परम साक्षरता ''**एवं व्रतः स्वप्रियनाम-कीर्त्त्या** अर्थात् श्रवण-कीर्त्तन आदि रूपी व्रतको धारण करके अपने प्रिय कृष्णके नामोंके कीर्त्तन अथवा स्वयंको प्रिय लगनेवाले भगवान्के नामोंके कीर्त्तनमें निमग्न''—इस भागवतीय (११/२/४०) श्लोककी प्रतिमूर्त्तिके रूपमें उनका दर्शन किया था। श्रील गौरकिशोर दास बाबाजी महाराजको ही श्रील प्रभुपादने 'मेरे प्रभु' [अर्थात् अपने प्रभु] के रूपमें शिरोधार्य किया था। श्रील प्रभुपादने सम्पूर्ण विश्वको दिखलाया कि जगतका समस्त पाण्डित्य बाबाजी महाराजके चरणकमलोंमें लोट-पोट खाता है—उनकी चरणधूलिको मस्तकके मुकुटके रूपमें धारण करना ही पाण्डित्यकी सार्थकता है।

भगवान्की कृपा होनेपर ही आश्रयविग्रहको पहचानना सम्भवपर

जीव एक जन्म अथवा जन्म-जन्मान्तरमें जितनी भी योग्यता क्यों न अर्जन कर ले, उससे भगवान्को प्राप्त नहीं किया जा सकता। 'ईश्वर-तत्त्व'के विषयमें वास्तविक-ज्ञान केवल ईश्वरकी कृपासे ही प्राप्त होता है। इसीलिये श्रौत-पन्था अर्थात् गुरु-परम्पराकी आवश्यकता है। यद्यपि श्रील प्रभुपाद नित्यमुक्त, अतिमर्त्य महापुरुष एवं सम्पूर्ण-जगतके गुरु थे, तथापि उन्होंने जगतमें 'आरोह-पन्था' पर थूतकारकर (थूककर) 'अवरोह-पन्था' की पराकाष्ठाको

१ गङ्गाके पश्चिमी तटमें यमुनाका अवस्थान माना जाता है।

स्थापित करनेके उद्देश्यसे ही श्रील बाबाजी महाराजका चरणाश्रय किया था। इसके द्वारा उन्होंने दिखलाया कि भगवान्‌की नित्य अप्राकृत युगल–सेवामें अधिकार प्राप्त करनेके लिये आश्रयविग्रह श्रीगुरुपादपद्मका आश्रय ग्रहण करनेकी आवश्यकता है एवं भगवतकृपा होनेपर ही उन आश्रयविग्रहको पहचाना जा सकता है।

श्रील प्रभुपादने जगतमें 'आरोह–पन्था' पर थूतकारकर (थूककर) 'अवरोह–पन्था' की पराकाष्ठाको स्थापित करनेके उद्देश्यसे ही श्रील बाबाजी महाराजका चरणाश्रय किया था।

गुरुसेवाके सर्वोत्तम आदर्श

श्रील सरस्वती ठाकुर, श्रील ठाकुर गौरकिशोरके साथ किस प्रकारसे सम्बन्धमें आबद्ध थे, यह विशेष रूपसे हमारी चर्चाका विषय है। श्रील बाबाजी महाराजने बहुत बार श्रील प्रभुपादको आदेश दिया था—''आप मेरे निकट रहिये, कलिके राज्य कलिकत्तामें कभी भी मत जाना।'' हम श्रील प्रभुपादके आचरणमें बाह्यदृष्टिसे देखते हैं—उन्होंने गुरु–आज्ञाका उल्लङ्घन करके कलिके राजत्व उसी कलिकत्तामें जाकर प्रथम श्रीगौड़ीय मठ स्थापित किया है। क्या इसके द्वारा हम यह समझें कि श्रील प्रभुपादने अपने गुरुदेवकी आज्ञाका उल्लङ्घन किया है, जिससे उनका महा–अपराध हुआ है?

पुनः देखा जाता है कि श्रील बाबाजी महाराज अनेक शिष्यादि नहीं बनाकर निर्जन–भजनानन्दी थे। उन्होंने केवल हमारे गुरुपादपद्मको ही शिष्यके रूपमें ग्रहण किया था। किन्तु श्रील प्रभुपाद अपने गुरुदेवकी भाँति निर्जन–भजन प्रयासी नहीं थे—अपितु उन्होंने पृथ्वीपर सर्वत्र प्रचार करके अनेक शिष्योंको वरण किया था। यह समस्त कार्यकलाप विविक्तानन्दी

बाबाजी महाराजके आदर्शके विरुद्ध कार्य लग सकते हैं। किन्तु वास्तविक विचारसे श्रील प्रभुपादकी समस्त क्रियाएँ ही गुरुसेवाके सर्वोत्तम आदर्शके रूपमें प्रतिष्ठित हुई हैं।

केवल निकटमें रहनेवाले सेवकोंको गुरुसेवामें नियुक्त मानना भ्रान्तिमय एवं अपराधजनक

यद्यपि बाह्यदृष्टिकोणसे दिखलायी देता था कि श्रील प्रभुपाद बाबाजी महाराजके निकट नहीं रहते थे, किन्तु अन्तर्दृष्टिकोणसे देखनेपर जाना जा सकता है कि वे सदैव बाबाजी महाराजके निकट ही अवस्थान करते थे—बाबाजी महाराज और उनके भजनके आचरणका आदर्श सम्पूर्ण रूपमें एक था। Morphology (अन्तर विचार) को छोड़कर Ontology (बाह्य विचार) का अवलम्बन करनेपर उनमें परस्पर अभिन्नताकी उपलब्धिकी जा सकती है। अतः निकटमें अवस्थान नहीं करके बहुत दूर रहकर भी गुरुसेवाका चरम आदर्श प्रदर्शित हो सकता है। जो निकट रहते हैं, केवल वे ही गुरुसेवामें नियुक्त हैं—इस प्रकारकी चिन्ता—भावना सम्पूर्ण रूपसे भ्रान्तिमय एवं अपराधजनक है। श्रील प्रभुपादका यह आदर्श नया नहीं है।

जो निकट रहते हैं, केवल वे ही गुरुसेवामें नियुक्त हैं—इस प्रकारकी चिन्ता—भावना सम्पूर्ण रूपसे भ्रान्तिमय एवं अपराधजनक है।

श्रीहरि—गुरु—वैष्णवकी सेवा—प्रवृत्तिसे दूर रहना ही गुर्वज्ञा

यहाँ उन श्रील नरोत्तम दास ठाकुरका आदर्श भी विवेचनीय है, जिनके परिवारके अन्तर्गत होनेके कारण हम स्वयंका रूपानुग परिचय देनेमें गौरव बोध करते हैं। श्रील नरोत्तम ठाकुरने वृन्दावनमें श्रील लोकनाथ गोस्वामीके निकट दीक्षा ग्रहणकर हमारे गुरुपादपद्मके जैसा ही आदर्श दिखलाया था। श्रील लोकनाथ गोस्वामी प्रभु लोकालयसे पृथक स्थानमें निर्जनमें अकेले भजन करते थे; उनके मनमें विचार था कि ''मैं किसीको भी शिष्य नहीं बनाऊँगा''। किन्तु श्रील नरोत्तम दास ठाकुरकी सेवाके कौशलसे मुग्ध होकर उन्होंने श्रील नरोत्तम ठाकुरको शिष्यके रूपमें ग्रहण किया। बादमें ठाकुर महाशयने अपने गुरुदेवके निकट वृन्दावनमें न रहकर एक हजारसे भी अधिक मील दूर जाकर 'श्रीपाट खेतरी' ग्राममें जगत् उद्धार—कार्यका व्रत धारण किया। क्या इस घटनाके द्वारा हम यह समझें कि वे अपने गुरुके आदर्शका उल्लङ्घन करनेवाले थे? आपलोग बुद्धिमान सज्जनमण्डली हैं—आचार्योंके इन सब आदर्शोंका अनुधावन करनेका प्रयत्न कीजिए; आपात—सत्य मधुपुष्पित वचनोंके द्वारा मुग्ध मत होइये। भजनके निगूढ़तत्त्वोंमें प्रवेश करनेकी चेष्टा कीजिए। वटका एक क्षुद्र बीज एवं विराट वटवृक्ष—इन दोनोंके बीच आपाततः विरोध देखा जाता है; किन्तु उस क्षुद्र बीजमें ही विराट वृक्षकी जो सत्ता विद्यमान है, उसका अनुमान कौन कर सकता है? अतः हम यह समझेंगे कि बीजसे ही वृक्षकी उत्पत्ति होती है, बीजमें विराट वृक्षकी सत्ता नहीं होनेपर इतने विशाल वृक्षके उद्भवकी सम्भावना नहीं हो सकती। अतएव **आपात—विरोध, विरोध नहीं होता। श्रीहरि—गुरु—वैष्णवकी सेवाकी प्रवृत्तिसे दूर रहना ही वास्तविक विरोध है।**

(श्रीगौड़ीय पत्रिका वर्ष—१३, संख्या—३ से अनुवादित)

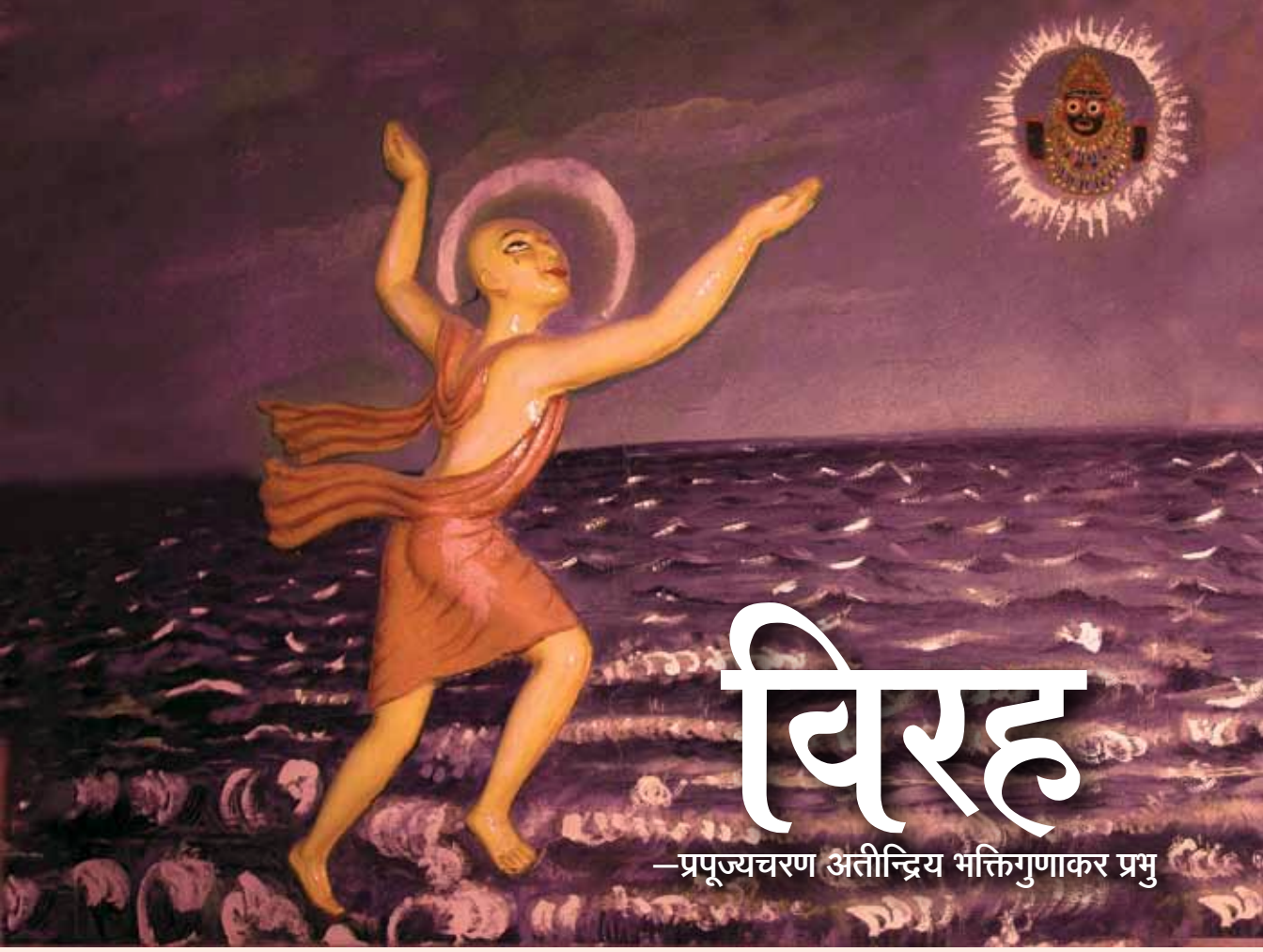

विरह

—प्रपूज्यचरण अतीन्द्रिय भक्तिगुणाकर प्रभु

सम्भोग एवं विप्रलम्भ रसका अर्थ तथा विरही व्यक्तिकी अवस्था

प्रिय वस्तुके मिलनसे चित्त सुखाकारमें परिणत हो जाता है। चित्तकी इसी सुखाकार परिणतिको ही सम्भोग–रस कहा जाता है। सम्भोगकी विपरीताकार चित्तपरिणतिका नाम विरह अथवा विप्रलम्भ–रस है एवं वह विरहभाव प्रियवस्तुके अदर्शनकालमें [अपने] स्वरूपको प्रकाशित करनेमें समर्थ होता है। प्रियवस्तुका अदर्शनकाल जितना दीर्घ होता जाता है, विरहभाव भी उतनी मात्रामें तीव्र और भीषण आकार धारण करता जाता है। अन्तमें जब विरही देखता है कि अपनी प्रिय वस्तुसे पुनः मिलनका घटित होना अत्यन्त कठिन है, तब वह किंकर्त्तव्यविमूढ़ और उन्मादग्रस्त हो उठता है। हमारे प्राणवल्लभ श्रीमद्गौरसुन्दरके द्वारा गम्भीरामें मुखघर्षण, चटक पर्वतसे उतरकर समुद्रको श्रीयमुना समझकर उसमें कूदना एवं ''काँहा जाऊ काँहा पाऊ व्रजेन्द्रनन्दन अर्थात् कहाँ जाऊँ, कहाँ जाकर व्रजेन्द्रनन्दनको प्राप्त करूँ'' इत्यादि खेदपूर्ण उक्तियोंका मुखसे निकलना, भगवद्विरहमें उत्पन्न दिव्य–उन्माद–लीलाका जाज्वल्यमान उदाहरण हैं।

प्राकृत और अप्राकृत विरह

विरह दो प्रकारका होता है—प्राकृत और अप्राकृत। अनित्य धन–जनादिके अभावमें जिस प्रकारका विरह भाव उत्पन्न होता है, उसे प्राकृत एवं जो समस्त प्रकारके

गुणोंका आकर (मूल), समस्त जीवोंका सुहृत, असामान्य रूपवाले लावण्यशाली नित्य प्रभु भगवान् श्रीकृष्णके अदर्शन–भावका व्यञ्जक होता है, उसे अप्राकृत–विरह कहते हैं।

दुःखप्रद प्राकृत–विरह–रसके आस्वादककी उसके पुनः आस्वादन अथवा स्मरण तकमें अरुचि

प्राकृत–विरहमें केवलमात्र दुःखकी ही अनुभूति होती है। जिन्होंने एकबार इस दुःखप्रद प्राकृत विरह–रसका आस्वादन किया है, वे इसे हेय पदार्थ समझकर इसका पुनः साक्षात्–रूपमें उपभोग करना अथवा इसके स्वरूपको स्मृतिशक्तिकी सहायतासे अपने स्मरण–पथपर आरुढ़ नहीं करना चाहते। पुत्र–वियोगमें कातर माताको उसके आत्मीय–सुहृत सर्वदा अन्यान्य चिन्तामें निमग्न रखनेकी चेष्टा करते हैं एवं उसके परिणाम–स्वरूप वह माता पुत्रके विरहसे उत्पन्न दुःखका परित्याग करनेमें समर्थ होती है। विरह–वेगके शान्त होनेपर यदि कोई उस माताके समक्ष उसके मृत पुत्रके विषयमें पुनः कोई बात करता है, तो वह उसे ऐसा नहीं करनेका अनुरोध करती है तथा कहती हैं कि पूर्व स्मृति जगाकर वृथा कष्ट देना अनुचित है। पुत्रकी जीवित अवस्थामें माता अपने पुत्रके कमनीय मुखमण्डलको देखकर, कोमल देहको स्पर्शकर और आधे–आधे मधुर वचनों (तोतली भाषा) को श्रवणकर अत्यन्त आनन्द अनुभव करती थी, किन्तु पुत्रकी मृत्युके पश्चात् पुत्रके माध्यमसे उस प्रकारके आनन्दको अनुभव करनेका सुयोग नहीं होता और पुत्रकी स्मृति उदित होनेपर आनन्दके स्थानपर दुःख आकर उपस्थित हो जाता है। (अर्थात् सुख–पिपासु जीवके स्वार्थमें बाधा उत्पन्न होती है) इसी कारण माता अब अपने मृत पुत्रके विषयमें सुनना तक भी नहीं चाहती। पुत्रकी मृत्युके पश्चात् यदि कोई उसी मातासे कहे कि तुम्हारा पुत्र भूत–योनिको प्राप्त हो गया है, तो यह सुनने मात्रसे ही वह भयभीत होकर अपनी आत्मरक्षाके लिये तत्पर हो जायेगी।

जब नित्य पदार्थका विनाश ही नहीं है, तब उससे सम्बन्धित विरहकी सत्यता भी तात्कालिक है, वास्तविक अर्थात् सार्वकालिक नहीं।

स्वार्थसिद्धिका अभाव ही प्राकृत–विरहका एकमात्र कारण

जो पुत्र जीवित अवस्थामें अत्यन्त प्रिय प्रतीत होता था, पाठकगण देखो! मृत्युके बाद उसी पुत्रको उसकी माता भीषण काल–स्वरूप मान रही है। अतएव देखा जाता है कि जागतिक–प्रीतिके मूलमें स्वार्थपरता छिपी रहती है एवं उस स्वार्थपरताको अङ्गुलिके निर्देशसे सर्वसाधारणको बतलानेके अभिप्रायसे ही उपनिषद्में कहा गया है–

"न वा अरे पुत्रस्य कामाय पुत्रः प्रियो भवति। आत्मनस्तु कामाय पुत्रः प्रियो भवति॥"

(श्रीबृहदारण्यक उपनिषद् ४/५/६)

अर्थात् पुत्रको सुखी करनेके लिये कोई पुत्रका सुखविधान नहीं करता। पुत्रके द्वारा अपनी इन्द्रियोंकी तृप्ति होनेके कारण ही मनुष्य पुत्रसे प्रीति करते हैं।

नित्य पदार्थसे सम्बन्धित विरह तात्कालिक, वास्तविक नहीं

प्राकृत–वस्तु नश्वर है एवं इसी कारण एकबार ध्वंस होनेपर वह पुनः प्राप्त नहीं हो सकती। अतः चिर–निराशाका भाव प्राकृत विरहका आश्रयकर विरहीके हृदयमें नृत्य करता रहता है। यदि यह निराशाका भाव प्राकृत–विरहका साथी न होता और पुनर्मिलनका भाव उसके स्थानपर अधिकार कर लेता, तो ऐसा होनेपर आशाके आनन्दपूर्ण–हिल्लोलमें विरह–वेदना तेजहीन हो जाती और विरही दुःखसे मेहित नहीं होता।

अनित्य–पदार्थकी भाँति नित्य–पदार्थ नश्वर–धर्म युक्त नहीं है। जिसका नाश असम्भव है, उसे ही नित्य पदार्थ कहते हैं। जब नित्य पदार्थका विनाश ही नहीं है, तब उससे सम्बन्धित विरहकी सत्यता भी तात्कालिक है, वास्तविक अर्थात् सार्वकालिक नहीं।

अप्राकृत भगवद्–विरह–रसके आस्वादककी उसके पुनः–पुनः आस्वादनमें रुचि

जिस प्रकार सूक्ष्मदर्शी (Microscope) नामक यन्त्रकी सहायतासे सूक्ष्म–कीटाणुओंको भी देखा जा सकता है, उसी प्रकार भक्तिपूर्ण अप्राकृत नेत्रोंके द्वारा नित्य–चिन्मय भगवान्‌की मूर्त्तिका भी दर्शन किया जा सकता है। जिस प्रकार मनुष्यके नेत्र सूक्ष्मदर्शी–यन्त्रकी सहायताके बिना सूक्ष्म–कीटाणुओंके होनेपर भी उन्हें देख नहीं पाते, उसी प्रकार जड़–नेत्रोंसे नित्य–सत्य ईश्वर–तत्त्व भी दिखलायी नहीं देता। भगवान्‌के दर्शनमें अयोग्य बद्धभूमिकामें अवस्थित मनुष्योंमें जब तक नास्तिक्य बुद्धि प्रबल रहती है, तब तक वे अप्राकृत–रसके आस्वादनमें समर्थ नहीं होते। किन्तु ईश्वर–तत्त्वका नित्य–अस्तित्व है, यह जाननेके कारण, तथा एक–न–एक दिन वे कृपापूर्वक अवश्य दर्शन प्रदान करेंगे, इस विश्वासके कारण आस्तिक्य बुद्धिसे युक्त भगवद्विरहीगण आशाबन्धसे युक्त होते हैं तथा उत्कण्ठाके साथ भगवानके नाम–रूप–गुण और लीलाके कीर्त्तनमें रुचि प्राप्त करते हैं। अप्राकृत भगवद्–विरहमें निराशासे उत्पन्न तापके स्थानपर आशाबन्धके कारण उत्तरोत्तर आनन्दका अनुभव होता है, जो भविष्यमें भगवत्–साक्षात्कार कराकर विरह–रसको सम्भोग–रसमें परिणत कर देता है।

अप्राकृत विरहीको विरह–भाव ताप प्रदान करनेमें असमर्थ

पूर्णब्रह्म–श्रीरामचन्द्रकी वनवास–लीला अथवा श्रीप्रह्लाद महाराजकी अग्नि–परीक्षा–लीलाका श्रवण करते समय यद्यपि भक्तगण दुःखमें अश्रुपात करनेके लिये बाध्य होते हैं, तथापि वे पुनः–पुनः भक्तिको वर्धित करनेवाली इन दोनों लीलाओंके इतिहासको सुननेके लिये अत्यन्त आग्रह प्रकाशित किया करते हैं। इस अत्यधिक आग्रहके बीचमें

©Sat Prema dāsa

विमल आनन्दका आलोक प्रदीप्त रहता है एवं उसीके प्रभावसे ही विष–दाँतोंसे रहित सर्पकी भाँति विरहभाव ताप प्रदान करनेमें समर्थ नहीं होता।

अप्राकृत विरहके प्रभावसे मनका आत्माके इङ्गितसे भगवत्–सेवामें प्रमत्त होना

जिस प्रकार विषयुक्त दाँतोंसे रहित सर्पके डसनेपर विषकी क्रियाके उत्पन्न नहीं होनेपर भी डसनेके कारण जिस प्रकार डसनेवाले स्थानपर किञ्चित तापका अनुभव होता है, उसी प्रकार श्रीभगवानके अदर्शनसे उत्पन्न जो किञ्चित विरह–वेदना होती है, वह भक्तोंको कुछ–समयतक अवश्य ही सहन करनी पड़ती है। किन्तु भगवद्–विरहके प्रभावसे चित्त तन्मय–भाव धारण करता है, जिससे अन्यान्य समस्त प्रकारकी वासनाएँ स्थानके अभावके कारण चित्तमें प्रवेश नहीं कर पातीं। विषय–वासनाओंकी प्रबलताके नष्ट होनेपर मन बिना किसी उपद्रवके आत्माका आनुगत्य स्वीकार करनेके लिये प्रस्तुत होता है तथा आत्माके इङ्गितसे मन भगवत–सेवामें प्रमत्त हो जाता है। सेवाबुद्धि जितनी वर्द्धित होती है, चित्त उतने ही परिमाणमें प्रफुल्ल–भाव धारण करता है एवं भगवद्–विरहको लाभकारी वस्तुके रूपमें स्वीकार करता है। अतएव स्पष्टरूपसे देखा जा सकता है कि भगवद्–विरहीको, पुत्र–शोकमें कातर माताके समान, शोकसे व्याकुल नहीं होना पड़ता एवं विरह–वेदनासे छुटकारा पानेके लिये उन्हें अन्य प्रसङ्गोंका आश्रय स्वीकार करनेकी भी आवश्यकता नहीं पड़ती।

अत्यधिक सुकृतिशाली जीवोंके उद्धारके लिये श्रीभगवान्‌के द्वारा अप्राकृत–विरहका धराधाममें प्रेरण

जिनके हृदयमें अप्राकृत भगवद्विरह उदित होता है, वे अत्यन्त सौभाग्यशाली हैं। [जन्म–जन्मान्तरकी] सञ्चित सुकृतियोंके बिना अप्राकृत विरहको प्राप्त नहीं किया जा सकता। जिनकी सृकृतियाँ अत्यधिक परिमाणमें सञ्चित हुयी हैं, उन्हींका उद्धार करनेके लिये

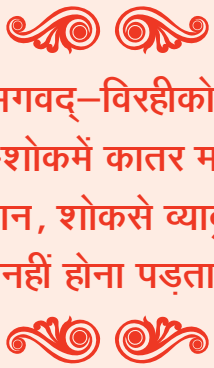

ही श्रीभगवान्‌के द्वारा अप्राकृत–विरह धराधाममें प्रेरित होता है एवं किसी–न–किसी महाभागवतके सङ्गके प्रभावसे वह सौभाग्यशाली जीवकी हृदयरूपी गुफामें प्रवेश करनेमें समर्थ होता है। भगवान् श्रीरामचन्द्रके किसी एक भक्तने कहा है–

''विरह राम भेजा साधुनको परमोद''

अर्थात् सज्जनोंको परमानन्दमें निमग्न करनेके लिये श्रीभगवान्‌की इच्छासे अप्राकृत भगवद्–विरह बद्धजीवके हृदयमें प्रविष्ट होता है। उन्हीं महात्माने पुनः कहा है–

''जा घट विरह नाहि, सा घट जानु मशान्''

अर्थात् जिस हृदयमें भगवद्–विरह नहीं है, वह हृदय मशान (कसाईकी दुकान) के समान है। वहाँ सब समय जीवकी देहकी हत्या की जाती है एवं इसी कारण वहाँ हिंसावृत्ति सर्वदा जागरुक रहती है। हिंसा अथवा मत्सरताकी आवास–भूमिमें निर्मत्सर भक्तोंकी सेव्य–भगवद्भक्तिके अङ्कुरका उद्गम नहीं हो सकता। जिस स्थानपर भगवान्‌की भक्ति अङ्कुरित नहीं होती, वहाँ भगवान्‌के दर्शनकी अभिलाषाको पूर्ण करानेवाला अप्राकृत–विरह किस प्रकार रह सकता है? अतएव निष्कर्ष यह है कि जब तक संसारके क्षयोन्मुख होनेका समय नहीं आता, तब तक शुद्धभक्तोंका सङ्ग प्राप्त नहीं होता और अप्राकृत भगवद्–विरह–रसके आस्वादनका सुयोग भी प्राप्त नहीं होता।

'स्वरूप' की प्राप्तिका उपाय

जीवेर 'स्वरूप' हय—कृष्णेर 'नित्यदास'।
कृष्णेर 'तटस्था—शक्ति', 'भेदाभेद—प्रकाश'॥
(चैच्च० मध्य २०/१०८)

[श्रील सनातन गोस्वामीके द्वारा श्रीचैतन्य महाप्रभुसे पूछे गये प्रश्न, ''मैं कौन हूँ?'' के उत्तरमें श्रीमन्महाप्रभु कह रहे हैं—''तुम जीव हो। क्या तुम जड़ीय पाँच तत्त्वोंसे उत्पन्न यह शरीर हो? नहीं; अथवा क्या तुम मन—बुद्धि—अहङ्कार स्वरूप लिङ्ग—शरीर ही हो? वह भी नहीं। तुम स्वरूपतः कृष्णके नित्य दास हो, तुम कृष्णकी तटस्था—शक्ति अर्थात् कृष्णके चिद्—जगत और मायिक जगत—इन दोनोंकी मध्यगत सीमामें स्थितिवशतः दोनों जगतोंसे सम्बन्ध होनेके कारण तुम—तटस्था शक्ति हो। कृष्णके साथ तुम्हारा भेदाभेद—प्रकाश रूपी दोनों प्रकारका 'सम्बन्ध' है। चिन्मय धर्मसे युक्त होनेके कारण तुम कृष्णके अभेद—प्रकाश तथा अणु चैतन्य धर्मवशतः बृहत्—चैतन्यरूप कृष्णके भेद—प्रकाश हो। कृष्णके साथ तुम्हारा भेद और अभेद—युगपत् सिद्ध है। जीवके तटस्थ—स्वभावसे ही यह युगपत् भेदाभेद—प्रकाश सिद्ध हुआ है।"]

सेई विभिन्नांश जीव—दुइ त' प्रकार।
एक—'नित्यमुक्त', एक—'नित्यसंसार'॥
'नित्यमुक्त'—नित्य कृष्णचरणे उन्मुख।
'कृष्ण—पारिषद' नाम, भुञ्जे सेवा—सुख॥
'नित्यबद्ध'—कृष्ण हैते नित्य—बहिर्मुख।
'नित्यसंसार' भुञ्जे नरकादि दुःख॥
काम—क्रोधेर दास हञा तार लाथि खाय।
भ्रमिते भ्रमिते यदि साधु—वैद्य पाय॥
तार उपदेश—मन्त्रे पिशाची पलाय।
कृष्णभक्ति पाय, तबे कृष्ण—निकट जाय॥
(चैच्च० मध्य २२/१०—१२, १४—१५)

[अर्थात् जीव—भगवान्का विभिन्नांश रूप है। विभिन्नांश जीव नित्यमुक्त और नित्यसंसार (बद्ध) के भेदसे दो प्रकारका है। नित्यमुक्त—जीवोंका कभी भी मायाके साथ सम्बन्ध नहीं हुआ। वे कृष्णके चिन्मयधाममें कृष्ण—चरणोन्मुख रहकर 'कृष्ण—पारिषद'के नामसे परिचित होते हैं तथा कृष्ण—सेवा—सुख ही उनका भोग है। नित्यबद्ध—जीव कृष्णसे नित्य बहिर्मुख रहकर संसारमें स्वर्ग—नरक आदि सुख—दुःख भोग करते है; वे काम—क्रोध आदि छः वेगोंके वशीभूत होकर माया—पिशाचीकी ठोकरें खाते हैं;—यही जीवका रोग है। संसारमें कभी उच्च तो कभी निम्न लोकोंमें भ्रमण करते—करते यदि कभी साधुरूपी वैद्य मिल जाता है, तब उसके उपदेश—मन्त्रसे माया—पिशाची दूर भाग जाती है तथा जीव भी कृष्णभक्ति प्राप्त करके कृष्णके पास पहुँच जाता है।]

अप्राकृत भगवद्–विरहकी हृदयमें आविर्भूत होनेकी पद्धति

श्रीचैतन्यचरितामृतके उपरोक्त सिद्धान्त वचनोंसे जाना जाता है कि जीवमात्र ही श्रीकृष्णके नित्य दास हैं। उनमेंसे कुछ भगवानके नित्य सेवा–परायण पार्षद एवं अन्य कुछ भगवत् सेवासे विमुख होनेके कारण मायाके द्वारा दण्डित किये जा रहे हैं। बद्धजीव जब भगवत्–विस्मृतिके कारण मायाके द्वारा तीन प्रकारके तापोंसे दग्ध किये जा रहे होते हैं, तब भी उनका नित्य भगवद्–दास्य–स्वरूप अविकृत ही रहता है अर्थात् परिवर्तित नहीं होता है। विवर्त (भ्रममयी) बुद्धिके वशीभूत होनेके कारण रस्सीको सर्प समझनेपर भी रस्सी जिस प्रकार रस्सी ही रहती है, उसी प्रकार बद्ध–अवस्थामें जीव स्वयंको जो कुछ भी क्यों न समझें, उससे उनके शुद्ध–स्वरूपकी कोई भी हानि नहीं होती। अनजानेमें प्रचुर सुकृतिके सञ्चय एवं प्रतिक्षण प्राकृत–विरहकी तीव्र वेदनाको भोगते–भोगते जब जीवके हृदयमें निर्वेद (विराग) आकर उपस्थित होता है और सत्सङ्गके प्रभावसे उनकी आस्तिक्य बुद्धि विकसित होती है, तब वे यह समझ पाते हैं कि भगवद्–सेवा परित्याग करनेके कारण ही उन्हें अबतक निरन्तर दुःख भोग करने पड़े हैं एवं जिस उपायसे सेवाबुद्धि पुनः प्राप्त की जा सकती है, वे उसका अनुसन्धान करने लगते हैं। उसी समयसे भगवद्–विरहका भाव उनके हृदयमें छा जाता है। जिस प्रकार दूध एकबार दही बन जानेपर पुनः दूध नहीं बन सकता, उसी प्रकार यदि बद्धावस्थामें जीव किसी अन्यरूपमें परिणत हो जाते, तो वे सुकृति सञ्चित होनेपर निर्वेद–दशामें साधुसङ्गके प्रभावसे पुनः भगवद्–दास्यको प्राप्त करनेके लिये लालायित नहीं हो पाते। अतः बद्धजीवोंको पुनः भगवद्–दास्यके लिये लालायित होते देखकर, यही प्रमाणित होता है कि बद्धावस्थामें उनका भगवद्–दास्यरूपी स्वरूप सुप्तवत् (सोये हुए जैसा) रहता है और उनकी बद्धावस्थाकी सत्यता भी तात्कालिक है, वास्तविक नहीं।

अप्राकृत–विरह अन्याभिलाषको ध्वंस करनेवाला

बद्धजीव किस समय इस बहिर्मुखताके भावको प्राप्त हुए, मनुष्यकी सीमाबद्ध बुद्धि इसके इतिहासका निर्णय नहीं कर सकती। इसीलिये शास्त्रोंमें बद्धजीवको ''अनादि बद्ध'' कहा गया है। जीव भगवद्सेवा, अथवा स्वसुखके लिये अन्य पदार्थोंकी सेवा करनेमें समर्थ हैं। दोनों प्रकारकी योग्यता होनेपर भी बद्धजीव अपनी स्वतन्त्रताका असद्–व्यवहार करनेके कारण ही स्वार्थपरताके राज्यमें विचरण करनेके लिये बाध्य हुए हैं। जिस मुहूर्त्त वे अपनी स्वतन्त्रताका सद्–व्यवहार करनेके लिये बद्ध–परिकर (दृढ़सङ्कल्प युक्त) होंगे, उसी समयसे ही वे अपने शुद्ध–स्वरूपनिष्ठ भगवद्–सेवानन्दके आभासकी उपलब्धि करेंगे एवं अन्य अभिलाषाओंको ध्वंस करनेवाले भगवद्–विरहको अपने हृदयमें स्थान देनेमें समर्थ होंगे।

सुकृतिके अभावके कारण ही बद्धजीव परमार्थप्रद भगवद्–विरहको प्राप्त करनेसे वञ्चित

अनादि बद्धजीवोंको उनके शुद्ध स्वरूपमें पुनः प्रतिष्ठित करनेके लिये श्रीभगवान् बहुत बार बहुत प्रकारके रूप धारणकर स्वयं इस धराधाममें प्रकटित हुए हैं एवं उन्होंने समय–समयपर अपने पार्षदोंको भी यहाँ भेजा है। बद्धजीव अनादिकालसे इस बहिर्मुखताके स्रोतमें डूब रहे हैं, अतः जब श्रीभगवान्के पार्षदगण इस धराधामपर प्रकट होते हैं,

तब निश्चित् ही बद्धजीवगण भी किसी–न–किसी योनिमें अवस्थान कर रहे होते हैं, किन्तु सुकृति नहीं होनेके कारण श्रीभगवान् अथवा उनके पार्षदोंका सङ्ग प्राप्त करनेका सुयोग प्राप्त नहीं कर पाते अन्यथा दुर्भाग्यवशतः उनके श्रीमुखसे निकली पारमार्थिक कथाओंको श्रवण करके भी उसमें श्रद्धा स्थापित करनेमें असमर्थ होते हैं। इस वाद–विवादपूर्ण कलियुगमें कुछ समय पूर्व श्रीकृष्णचन्द्रने श्रीगौरहरिके रूपमें अपनी लीला की थी एवं मात्र १० वर्ष पूर्व [वर्त्तमान समयसे ९७ वर्ष पूर्व] तक उनके पार्षदप्रवर श्रील भक्तिविनोद ठाकुर महोदय बङ्गालमें प्रकटित थे। किन्तु ऐसा होनेपर भी पृथ्वी आज भी वञ्चित बहिर्मुख और दुष्टोंसे परिपूर्ण है। इस सुविशाल दुष्ट और बहिर्मुख–मण्डलीको देखकर यही प्रमाणित होता है कि पुनः–पुनः श्रीभगवान् और उनके पार्षदगणोंका आगमन होनेपर भी केवलमात्र सुकृतिके अभावमें ये बद्धजीव परमार्थप्रद भगवद्विरहको प्राप्त करनेसे वञ्चित हो रहे हैं। कितनी बार सत्य, त्रेता, द्वापर और कलियुग चला गया एवं युग–युगमें कितने अवतार आये; किन्तु हाय! धन, विद्या, जाति एवं रूपके मदमें कितनी भीषण मत्तता है! कल्याणके पथपर धावित होनेके लिये बद्धजीवोंमें तनिक भी श्रद्धा नहीं हो पा रही है। अनन्तकालसे वे जिस अन्धकारमें रह रहे हैं, अभी भी उसी अन्धकारमें पड़े हुए हैं। क्या यही उनके पाण्डित्यका परिचायक है?

सुहृत्तवर महाभागवतको पहचाननेकी शिक्षा प्राप्तिसे ही विप्रलम्भ–भावका आस्वादन करनेकी योग्यताकी प्राप्ति

अभी भी कोई भगवद्–पार्षद[१] बङ्गालमें उपस्थित हैं। धन, जाति, रूप एवं विद्याके मदमें गर्वित हे अन्ध नवसमाज! उनके प्रति आप लोग तुच्छबुद्धि नहीं करना। दाँतोंमें तृण धारण करके दीनतापूर्वक विनती करता हूँ कि आपलोग

१ लेखक १९२४ ई॰ में श्रीधाम मायापुरमें अवस्थित अपने गुरुदेव श्रीश्रीमद्भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुरकी ओर इङ्गित कर रहे हैं।

केवलमात्र सुकृतिके अभावमें बद्धजीव परमार्थप्रद भगवद्विरहको प्राप्त करनेसे वञ्चित हो रहे हैं।

कालको व्यर्थमें व्यतीत नहीं करके अपने उन्हीं सुहृतवरको पहचाननेकी शिक्षा प्राप्त करें एवं उनके चरणोंमें गिरकर क्षमा–भिक्षा और कृष्ण दीक्षा–शिक्षा आदि प्राप्त करें। ऐसा होनेपर आपका द्वितीय अभिनिवेशज भय[२] नहीं रहेगा एवं आपलोग समस्त प्रकारके रसोंमें श्रेष्ठ विप्रलम्भ–भावका आस्वादन करके जीवनको सार्थक करनेमें समर्थ होंगे। मायापिशाचीने आपलोगोंको सुदीर्घकालव्यापी दुःख दिया है एवं देखिये! भविष्यमें उससे भी अधिक समयके लिये ताप देने हेतु वह आपके पीछे खड़ी है। यदि आपलोग इस वर्त्तमान सुयोगको छोड़ देंगे, तो आपलोग अवश्य ही इस पिशाचीके विकराल (भयंकर) मुखमें पड़ जायेंगे।

प्राकृत सम्भोग–सुख अथवा विप्रलम्भ–दुःख कामगन्ध रहनेके कारण रस–तत्त्वके अन्तर्गत नहीं

शास्त्रोंमें सम्भोग और विप्रलम्भ–इन दोनोंको ही रसतत्त्व कहा गया है। जागतिक अथवा प्राकृत विरहमें केवलमात्र दुःखकी अनुभूति होनेके कारण उसके प्रति रस अथवा आनन्दतत्त्वकी धारणा नहीं करना ही उचित है। **"तं विद्याद्दुःखसंयोगवियोगं योगसंज्ञितम्"**—गीता (६/२३) में उक्त इस आधे श्लोककी टीकामें श्रीधर स्वामिपादने विषय–सम्भोग जनित सुखको दुःखके ही अन्तर्भुक्त कहा है। उनका अभिप्राय यह है कि जिसका अन्त होनेपर दुःख

२ भगवान्‌के अतिरिक्त अन्यान्य वस्तुओंमें आविष्ट रहनेसे उत्पन्न होनेवाला भय।

आकर उपस्थित हो जाये, वह दुःखका ही बीज है अर्थात् वैषयिक सुख, दुःखका ही अवस्थान्तर मात्र है। अतएव प्राकृत सम्भोग–सुखको रस–तत्त्वकी तालिकामें नहीं रखा जा सकता।

कामकी लेशमात्र-गन्धसे रहित अप्राकृत भगवद्-विरह सेवानन्दको उदित करानेवाला

कामगन्ध रहनेके कारण प्राकृत–सम्भोग अथवा प्राकृत विरह–भाव दुःख उत्पन्न करता है। अप्राकृत भगवद्–विरहमें कामकी लेशमात्र–गन्ध भी नहीं रह सकती, इसलिए अप्राकृत भगवद्–विरह दुःखके स्थानपर सेवानन्दका उदय कराता है। जिन्होंने स्वार्थपरता की क्षुद्रसीमाको पार कर लिया है, वे ही स्वयंको श्रीभगवान्के सुखमें सुखी अनुभव करनेमें समर्थ होते हैं एवं उन्हें श्रीभगवान् जब जिस रूपमें सजानेकी इच्छा करते हैं, वे तत्क्षणात् उसी रूपमें सज्जित होकर काय–मन–वाक्यसे भगवत–प्रीतिका वर्द्धन करनेमें तत्पर हो जाते हैं। ''आलिङ्गन देओ किम्बा दलह चरणे अर्थात् आलिङ्गन कीजिए अथवा अपने चरणोंके नीचे रौंद दीजिए" ऐसे वचन उन्हींके निकट ही शोभा पाते हैं।

अप्राकृत भगवद्–विरहमें कामकी लेशमात्र–गन्ध भी नहीं रह सकती, इसलिए अप्राकृत भगवद्–विरह दुःखके स्थानपर सेवानन्दका उदय कराता है।

भक्त भगवत्-प्रीतिके लिये प्राणोंको दाँवपर लगाकर चिर-विरहको भी सहन करने हेतु प्रस्तुत

श्रीभगवान्के सुखमें सुखी रहनेवाले भक्त यदि यह जान लें कि चिर–विरहके द्वारा उनके प्राणेश्वर तृप्त होंगे तब तो वे चिर–विरहको भी सहन करनेमें तनिक भी पीछे नहीं हटते। जो निष्किञ्चन नहीं हो पाये हैं, वे ''चिरविरह'' शब्द सुननेमात्रसे ही भयसे विह्वल हो जाते हैं। जिन्होंने किञ्चित सेवाबुद्धि प्राप्त की है, वे समझ सकते हैं कि अहैतुकी–राज्यमें विचरण करते समय सेवकोंकी अपने कल्याणके प्रति लेशमात्र भी दृष्टि नहीं रहती एवं भगवत्–प्रीतिके लिये जो कोई भी कार्य उनके नेत्रोंके समक्ष उपस्थित होता है, उनमें उस कार्यको अपने प्राणोंको दाँवपर लगाकर भी सुसम्पन्न करनेके लिये दुर्दमनीय रुचि उदित हो जाती है। शुष्क–वैरागीकी भाँति उन्हें अपनी इच्छाके विरुद्ध आचरण नहीं करना पड़ता। भगवत–सेवा जनित प्रत्येक रस ही उत्तम है; किन्तु तटस्थ होकर विचार करनेपर उनमें तारतम्य है।

श्रीकृष्णमें भी विरह-भावको आस्वादन करनेका लोभ

पूर्णानन्दके भण्डार श्रीकृष्णमें किसी भी प्रकारके आनन्दका अभाव नहीं है। एकदिन श्रीमती राधिकाकी विरह–दशाके भावका दर्शनकर श्रीकृष्णमें उस भावको आस्वादन करनेका लोभ उत्पन्न हुआ और इसी कारण वे श्रीगौरहरिका रूप धारणकर उस भावका आस्वादन करनेके लिये श्रीनवद्वीपमें प्रकटित हुए।

विरहमें मिलनकी अपेक्षा अधिक आस्वादन

उपरोक्त घटनासे हम एकसाथ दो शिक्षाएँ प्राप्त करते हैं, यथा–(१) मिलनके पूर्व अथवा परवर्त्ती उत्कण्ठा, अथवा विरहभावमें मिलनजनित सम्भोग–रसकी अपेक्षा आस्वादन कम नहीं है–"जार जेइ भाव सेइ से उत्तम अर्थात् जिसका जो भाव है, वही उत्तम है"–यह प्रमाणित हुआ एवं (२) सम्भोग–रसमें विभोर होनेकी अवस्थामें विप्रलम्भ–रसके आस्वादनके लिये इच्छा बलवती होनेपर विप्रलम्भ–रसका अधिक आस्वादनीय होना सूचित हुआ अर्थात् तटस्थ होकर विचार करनेपर जो तारतम्य भाव लक्षित होता है, वह विघोषित हुआ।

पाण्डित्यकी सहायतासे दिव्य–विप्रलम्भ–रसके कणमात्रको भी समझना असम्भव

हाय बद्धजीव! विषयगर्त्तमें अवस्थान करते समय इस दिव्य–विप्रलम्भ–रसके कणमात्रको भी पाण्डित्यकी सहायतासे नहीं समझ पाओगे। "**उत्तिष्ठ, जाग्रत, प्राप्य वरान निबोधत** अर्थात् हे साधुगण! नाना प्रकारकी विषय चिन्ताओंसे निवृत्त होओ, अनर्थ परित्याग करके स्वस्वरूपमें प्रतिष्ठित होओ, महान् व्यक्तियोंकी कृपा प्राप्त करके भगवान्‌को जाननेके लिए सचेष्ट होओ'' (कठोपनिषद् २/३/१४)।

अप्राकृत–सम्भोग और विप्रलम्भ–दोनों रस ही एकात्मक पदार्थ

प्रकाश और अन्धकार स्थूल दृष्टिसे परस्पर विपरीत पदार्थ हैं, ऐसा अनुभव होनेपर भी जिस प्रकार वैज्ञानिक विचारसे इन्हें एक ही पदार्थके प्रकारभेदके रूपमें स्वीकार किया जाता है, उसी प्रकार अप्राकृत सम्भोग और विप्रलम्भ—ये दोनों रस हैतुकी बद्धदृष्टिसे विभिन्न तत्त्वोंके रूपमें अनुभूत होनेपर भी, भक्तिपूर्ण अहैतुकी चिद्–दृष्टिमें इन्हें एकात्मक पदार्थके रूपमें ही स्वीकार किया जाता है।

नित्यमुक्त भगवत्–पार्षदोंके लिये विप्रलम्भ–रस सम्भोग–रसका पुष्टिकारक

नित्यमुक्त जीव भगवत–पार्षदके रूपमें अवस्थान करते हुए सदा भगवत्–सेवामें रत रहते हैं। वे सम्भोग–रसके पात्र हैं। उन्हें विप्रलम्भ–रसका आस्वादन प्राप्त होनेपर भी वह उनके सम्भोग–रसकी ही पुष्टि मात्र है।

नित्यबद्ध–जीव ही विरह–रसके पात्रराज

भगवत–सेवा परित्यागकर नित्यबद्ध–जीवके रूपमें जो इस धराधामपर आकर अपने सुखसाधनमें व्यस्त हैं, वे ही वास्तविक रूपमें विरह–रसके पात्रराजके रूपमें सृष्ट हुए हैं। इसका कारण है कि कुछ–समयतक बद्धभूमिकामें त्रिताप–ज्वालामें विचरण नहीं करनेपर भगवत–स्मृति जागरुक नहीं होती और उससे पहले विप्रलम्भ–भावके माधुर्यका आस्वादन करनेके योग्य नहीं हुआ जा सकता। जीवोंकी बन्धन–योग्यता, विचित्र–लीला प्रकट करनेवाली अपरा–शक्तिके द्वारा सृष्ट हुई है, यह स्वतः ही प्रतिपादित होता है।

भगवद्–विरह रूपी सुशीतल समुद्रमें निमग्न होनेसे ही भोग एवं मोक्षकी प्यासकी शान्ति सम्भवपर

हे पाठकवर्ग! एकबार विचार करके देखिये कि जब हमने बद्धभूमिकामें स्वेच्छापूर्वक आगमन किया है, तब हमारे लिये कर्त्तव्यके रूपमें क्या अवशिष्ट रह जाता है? नित्यकालके लिये सुमहान, अप्राकृत विप्रलम्भ–भावमें निमज्जित होना ही क्या हमारा वह अवशिष्टरूप कर्त्तव्य नहीं है? यदि काल–विलम्ब नहीं करके हम उस भगवद्–विरहरूपी सुशीतल समुद्रमें कूद जायें, तभी अतिशीघ्र ही हमारी भोग और मोक्षकी प्यास शान्त हो जायेगी एवं **"अयि दीनदयार्द्र नाथ हे मथुरानाथ, कदावलोक्यसे** अर्थात् ओहे दीनदयार्द्रनाथ! ओहे मथुरानाथ! कब तुम्हारा दर्शन करूँगा?'' (श्रीचैतन्यचरितामृत मध्य ४/१९७) ऐसी प्रार्थना करते–करते जीवनके बचे हुए दिन व्यतीत करके हम देहके अन्त होनेपर नित्यलीलामें प्रवेश करनेका अधिकार प्राप्त करेंगे।

विप्रलम्भ-रसको प्राप्त करनेकी शिक्षा देनेके लिये श्रीगौरसुन्दरका धराधामपर प्राकट्य

''अद्यापिह सेइ लीला करे गौरराय, कोन–कोन भाग्यवान देखिवारे पाय॥ अर्थात् आज भी श्रीगौरसुन्दर अपनी उन्हीं लीलाओंको कर रहे हैं, किन्तु उसे केवल कोई–कोई सौभाग्यवान जन ही देख पाता है।'' (श्रीचैतन्यभागवत मध्य २३/५१३) —इस उत्तम वचनसे हमें ज्ञात होता है कि हमारे प्राणवल्लभ श्रीगौरसुन्दर आज भी दिव्य–उन्माद दशामें इधर–उधर धावित हो रहे हैं। हमें विप्रलम्भ–रसका पात्र देखकर उस विप्रलम्भ–रसको प्राप्त करनेकी शिक्षा देनेके लिये उन्होंने इस धराधामपर प्रकट होकर अपनी दिव्य–लीलाओंका कुछ अंश हमें दिखलाया था। आइये! हम उनके द्वारा आचरित लीलाओंका अनुशीलन करते–करते देहका अन्त होनेपर उनके निजजनोंमें मिलित होकर, सेवाके उद्देश्यसे श्रीमन्महाप्रभुके पीछे–पीछे अनुगमनके लिये प्रस्तुत हों।

(साप्ताहिक गौड़ीय वर्ष—२, संख्या—४८ से अनुवादित)

[प्रपूज्यचरण श्रीपाद अतीन्द्रिय भक्तिगुणाकर प्रभु श्रीश्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराजके परम बान्धव गुरुभ्राता थे। श्रील भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराजके आतिथ्य और सेवामय जीवनसे प्रभावित होकर ही इन्होंने श्रीश्रीमद्भक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी ठाकुर 'प्रभुपाद' के श्रीचरणोंका आश्रय ग्रहण किया था। श्रीपाद अतीन्द्रिय भक्तिगुणाकर प्रभुने 'श्रीगौड़ीय–कण्ठहार' नामक अनुपम ग्रन्थ–रत्नका सङ्कलन करके उसे अपने परमाराध्य गुरुदेवके करकमलोंमें समर्पित किया था।]

वास्तविक अनुसरण

दर्शन–शास्त्रके वास्तविक प्रतिपाद्य विषयको पाश्चात्य जगतमें वितरण करनेकी प्रेरणा प्रदान करनेवाले श्रेष्ठ एवं निर्भीक प्रचारक

"अतिमर्त्त्य महापुरुष श्रीश्रीमद्भक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी ठाकुरका जीवन ही एक उपदेश–पट (blackboard) है। श्रीगौड़ीय सम्प्रदायके वेदान्त–आचार्यभास्कर श्रीमद् बलदेव विद्याभूषण प्रभुके बाद अन्धकारसे आच्छन्न गौड़ीय–गगनको इन्होंने ही आलोकित किया है। वेदान्तके वास्तविक तात्पर्यको इनके कृपाभिषिक्त निजजनोंने ही निर्भीकभावसे प्राच्य और पाश्चात्य जगतमें विस्तृत रूपसे प्रचार किया है और कर रहे हैं। ये भारतीय दर्शनशास्त्रके वास्तविक प्रतिपाद्य विषयको पाश्चात्य जगतमें वितरण करनेकी प्रेरणा देनेवाले, तथा श्रेष्ठ एवं निर्भीक पथ–प्रदर्शक थे। असीम व्यक्तित्व सम्पन्न महापुरुषोंकी कथा साधारण मनुष्योंके लिये हृदयङ्गम करना अत्यन्त दुष्कर कार्य है। इसीलिए अनेक सुविधावादी लोगोंके कानोंको ऐसे महापुरुषोंका दृढ़कण्ठ (कठोर वाणी) विषके समान प्रतीत होता है।

वस्तुको त्यागकर मनगढ़न्त धर्मका करना श्रील प्रभुपादकी धारा नहीं

—श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त वामन गोस्वामी महाराज

[श्रीश्रील प्रभुपादकी तिरोभाव तिथि ९/१२/१९५८,
श्रीदेवानन्द गौड़ीय मठ, नवद्वीपमें प्रदत्त वक्तृताके कुछेक अंश]

भागवतधर्म मूर्ख और सुविधावादी लोगोंके लिये नहीं

एकदिन मैंने आलोचनाक्रममें अस्मदीय श्रीगुरुपादपाद्म नित्यलीला प्रविष्ट ॐ विष्णुपाद अष्टोत्तरशत श्रीश्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराजके निकट पूछा—''श्रील प्रभुपाद जो विचारधारा जगतको देना चाहते थे, उसका अनुसरण करना क्या साधारण लोगोंके लिये सम्भव होगा?" इसके उत्तरमें श्रील गुरुपादपद्मने कहा था—''वह सम्भव हो अथवा न हो, किन्तु ऐसा कहकर वास्तविक वस्तुको त्यागकर मनगढ़न्त धर्मका अनुसरण करना श्रील प्रभुपादकी धारा नहीं है। इसी प्रसङ्गमें श्रील प्रभुपादने एकबार कहा था—भागवतधर्म मूर्ख और सुविधावादी लोगोंके लिये नहीं है। साधारण जगतमें भी क्या सभी मनुष्य एम.ए अथवा डॉक्टरेटकी डिग्री प्राप्त कर पाते हैं? प्रत्येक व्यक्ति ही डॉक्टरेटकी डिग्री प्राप्त कर सकें, इसके लिये विश्वविद्यालय अपनी निर्धारित चिन्ताधाराके मापदण्डको अर्थात् अपने पाठ्यक्रमको निम्न स्तरपर नहीं ला सकता। यदि विश्वविद्यालय ऐसा करें, तो उच्च शिक्षाका वैशिष्ट्य नहीं रहेगा।

गीता-भागवतके प्रति श्रद्धा रखनेपर भी अल्प-संख्यक लोग ही भागवत-धर्मके पालनमें प्रयासरत

"यदि एक जीव भी ठीक-ठीक रूपमें भागवतधर्मसे अवगत होनेकी सुविधा प्राप्त कर ले, तो इतना ही यथेष्ट

है। बहुत कम जीव ही आत्ममङ्गलके लिये चेतनता प्राप्त कर पाते हैं। अतः केवलमात्र कुछ ही जीवोंके इस मार्गपर आनेपर भी इसमें दुःखी होनेकी कोई आवश्यकता नहीं है। इसका कारण है कि विद्यालयमें उत्तम छात्रोंकी संख्या कम ही होती है। आकाशमें सुशीतल आलोक प्रदान करनेवाला चन्द्र केवल एक ही है। जगतमें मूल्यवान धातुओंकी संख्या भी कम है। इसी प्रकार अल्पसंख्यक लोग ही भागवतधर्मका पालन करनेके लिये प्रयासरत हैं, अतः इसके लिये दुःख करनेकी कोई बात नहीं है। यद्यपि जगतमें प्रत्येक मनीषीवृन्द ही, यहाँतक कि राजनीतिज्ञ, समाजनीतिज्ञ आदि मनुष्य भी गीताके प्रति श्रद्धा रखते हैं, तथापि इसी गीता (७/३) में भगवानने कहा है—

मानुष्याणां सहस्रेषु कश्चिद् यतति सिद्धये।
यततामपि सिद्धानां कश्चिन्मां वेत्ति तत्त्वतः॥

[अर्थात् असंख्य जीवोंमें कदाचित् कोई मनुष्य जन्म प्राप्त करता है, सहस्र–सहस्र मनुष्योंमें–से कोई–कोई सिद्धिके लिए यत्न करते हैं और सहस्र–सहस्र सिद्धोंमें–से भी कोई एक मुझे अर्थात् मेरे भगवत्–स्वरूपको तत्वतः जानते हैं।]

"सर्वशास्त्रशिरोमणि श्रीमद्भागवत (६/१४/३–५) में भी कहा गया है—

रजोभि समसंख्याताः पार्थिवैरिह जन्तवः।
तेषां ये केचनेऽन्ते श्रेयोः वै मनुजादयः॥
प्रायो मुमुक्षवन्तेषां केचनैव द्विजोत्तम।
मुमुक्षुणां सहस्रेषु कश्चिन्मुच्येत सिध्यति॥
मुक्तानामपि सिद्धानां नारायण–परायणः।
सुदुर्लभः प्रशान्तात्मा कोटिष्वपि महामुने॥

[इस जगत्में जिस प्रकार पार्थिव परमाणु (धूलके कण) असंख्य हैं, उसी प्रकार जीव भी असंख्य हैं। इन समस्त जीवोंमें मनुष्योंकी संख्या बहुत कम है और उनमें भी कोई–कोई ही धर्मका आचरण किया करता है।

हे द्विजोत्तम! उक्त धर्मका आचरण करनेवालोंमें बहुत ही कम ऐसे होते हैं, जो मोक्षकी इच्छा करते हैं। हजारों मुमुक्षुओंमें भी कदाचित् कोई व्यक्ति ही गृह आदि असत्सङ्गसे मुक्त हो पाता है। इन असत्सङ्गरहित व्यक्तियोंमें भी कदाचित् कोई व्यक्ति ही भगवान्के तत्त्वको जान पाता है।

हे महामुने! इस प्रकार करोड़ों मुक्तों एवं सिद्धजनोंमें भी प्रशान्तात्मा नारायण–परायण भक्त अत्यन्त दुर्लभ है।]

हम निर्भीक होकर समस्त विश्वमें प्रचुर परिमाणमें प्रचार करनेका प्रयास करेंगे, किन्तु आत्मचेतनाको भूलकर नहीं।

"अतः इस विषयमें चिन्ताकी कोई बात नहीं है। कलि–कवलित जीव मायाकी ओर धावित होंगे ही। ऐसी अवस्थामें भी हम निर्भीक होकर समस्त विश्वमें प्रचुर परिमाणमें प्रचार करनेका प्रयास करेंगे, किन्तु आत्मचेतनाको भूलकर नहीं।"

श्रील प्रभुपाद हमें ऐसी शक्ति प्रदान करें, जिससे हममेंसे प्रत्येक व्यक्ति ही उनके कृपा–आशीषको प्राप्त करनेके लिये प्रयासरत हों।

(श्रीगौड़ीय–पत्रिका वर्ष–२०, संख्या–११ से अनुवादित)

विरह–व्यथित हृदयका करुण–क्रन्दन

–श्रीपाद जितकृष्ण प्रभु

[श्रीश्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराजकी विरह तिथिके उपलक्ष्यमें लिखित पुष्पाञ्जलिके कुछेक अंश]

परमाराध्यतम गुरुपादपद्म ॐ विष्णुपाद श्रीश्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराज आज हमारे बीचमें रहनेपर भी नहीं हैं, इस विरहवार्त्ताके समस्त दिशाओंमें घोषित होनेके साथ–ही–साथ रूपानुग गुरुवर्ग और उनके अनुगत भक्तवृन्द विरहमें मोहित हो गये हैं। आचार्य–सिंहके अदर्शनमें विरह–व्यथाने हृदयके भीतर गुप्त क्रन्दनका सुर धारण कर लिया है।

श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिके प्रतिष्ठाता नित्यलीलाप्रविष्ट ॐ विष्णुपाद परमहंस आचार्यवर्य अष्टोत्तरशतश्री श्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराजके नित्यलीलामें प्रवेशको जागतिक दृष्टिसे एकवर्ष पूर्ण हो गया है। उनके विरह–उत्सवमें योगदान करनेके लिये देश–देशान्तरसे भक्तवृन्द समागत अथवा समुपस्थित हुए हैं।

शोक और विरहमें पार्थक्य

कहीं ऐसा न हो कि आज इस उत्सवके दिन हम शोक और विरहको एक ही समझ बैठें। जागतिक दृष्टिकोणसे दोनों ही देखनेमें एक ही प्रकारके होनेपर भी इनमें प्रचुर पार्थक्य विद्यमान है। शोकके द्वारा भवबन्धन दृढ़तर होता है और विरहके द्वारा भक्त और भगवान्‌की स्मृति–स्फूर्त्ति होती हैं; शोक शुद्रत्व भावकी वृद्धि करता है और विरह त्रिगुणसे अतीत अतिमर्त्य चरित्रकी ओर धावित कराके कृष्ण–सान्निध्यमें पहुँचा देनेकी प्रेरणा जगाता है। शोक स्वजनोंके वियोगमें उच्च–क्रन्दनका रूप धारणकर आकाश–वायुको मुखरित करता है एवं आर्थिक और सामाजिक उपकारसे वञ्चित होनेके कारण व्यक्तिको शोकाकुल–करके भविष्यकी चिन्तामें निमग्न कर देता हैं। विरह किन्तु शोकके विपरीत धर्मवशतः भक्तको श्रीगुरु–वैष्णवोंके अदर्शनसे उत्पन्न वेदना दान करता हैं; श्रीगुरुपादपद्मके श्रीमुखनिःसृतवाणीके श्रवणके सौभाग्यसे वञ्चित करता है, एवं श्रीभगवान्‌के अनेक निगूढ़–तत्त्वोंकी कथाएँ, जो कभी भी प्रकाशित नहीं हुईं थीं, उन सभी तत्त्व–कथाओंसे वञ्चित करता है। यही वेदना है—यही दुःख है और यही विरह है। अर्थात् हाय! हाय! लगता है, मैं इस जीवनमें अब श्रीगुरुपादपद्मके सान्निध्यमें आकर श्रीहरिकथाके श्रवणके सुखसे वञ्चित होकर पुनः संसाररूपी विषय–सागरमें निमज्जित हो गया, इत्यादि। विरहमें इस प्रकारकी खेदोक्ति होती है। अतः शोक बन्धनका कारण होता है एवं विरह मुक्तिका पथ प्रशस्त करता है।

विरह–व्यथित भक्तकी वास्तविक चिन्ता

आज एक वर्षके पश्चात् इस विरह–उत्सवमें सम्मिलित होकर मुझ अवहेलित वञ्चितजनकी जो व्यथा है, उसीके विषयमें ही चिन्ता कर रहा हूँ। मदीय निज–अभीऽष्टदेवकी श्रीमुखनिःसृतवाणीको श्रवण करनेके सौभाग्यसे वञ्चित होनेके कारण विरह–सागरमें निमज्जित होकर संसारमें निमग्न होकर डगमगा रहा हूँ। कौन मेरा उद्धारकर मुझे गोलोकके द्वारपर पहुँचाकर श्रीराधा–गोविन्दकी कथा श्रवण करायेगा? "स्वरूपे सबार हय गोलोकेते स्थिति अर्थात् स्वरूपतः सभीकी गोलोकमें स्थिति है''—कौन इस मर्मवाणीके भीतर प्रवेश कराके जीवके स्वरूपज्ञानका दान करेगा? कौन श्रील प्रभुपादके मनोऽभीष्टको पूर्ण करानेवाली कथाओंका कीर्त्तनकर शुद्ध भगवद्भक्तिकी कथाके द्वारा जगतवासियोंको सचेत करेगा? नाना प्रकारके छलधर्मोंके स्वरूपको उद्घाटितकर श्रीमद्भागवत् (१/१/१)की ''**निरस्तकुहकं सत्यं परं धीमहि** अर्थात् जिन परमेश्वरमें सत्त्व, रजः और तमः गुणोंका अवस्थान सत्यकी भाँति प्रतीत होनेपर भी वस्तुतः जिनमें जड़धर्म सम्भव ही नहीं है, जो माया और मायाके कार्य—कपटतासे सर्वदा मुक्त हैं, समस्त जीवोंके हृदयमें विराजित तथा सर्वदेशकालवर्ती उन्हीं सत्यस्वरूप–लक्षणमय परमेश्वरका हम ध्यान करते हैं'' वाणीकी गूढ़ कथाको प्रकाशितकर वास्तव सत्य वस्तुकी अपनी प्रतीतिका प्रार्थक्य अथवा वैषम्य उत्पादन नहीं करके भक्तगणोंको भगवत् सान्निध्यमें कौन पहुँचायेगा?

कौन मेरा उद्धारकर मुझे गोलोकके द्वारपर पहुँचाकर श्रीराधा–गोविन्दकी कथा श्रवण करायेगा? . . . कौन श्रील प्रभुपादके मनोऽभीष्टको पूर्ण करानेवाली कथाओंका कीर्त्तनकर शुद्ध भगवद्भक्तिकी कथाके द्वारा जगतवासियोंको सचेत करेगा?

गुरुदेवकी अनुपस्थिति सभी भक्तोंके मनको व्यथित करनेवाली

आज इस उत्सवके दिन अनन्त प्रश्न हृदयमें उपस्थित होकर मनको विह्वल कर रहे हैं। जिनके सान्निध्यमें आनेपर समस्त संशय, समस्त अनर्थ निवृत्त हो जाते थे एवं भक्तगण अपार आनन्दमें कृष्णकथा–आलापनमें दिन अतिवाहित करके, मनमें अत्यधिक आनन्दित होते हुए गृहमें प्रत्यावर्त्तन करते थे, आज उनकी क्या अवस्था है! यही भावना—यही चिन्ता ही मनको व्यथित कर रही है।

दीनजनकी प्रार्थना

श्रीगुरुपादपद्म शुद्धनाममें रुचि उत्पन्न करानेके लिये जो समस्त उपदेश प्रदान करते थे, आज उनसे वञ्चित होकर नामभजनमें अपराधकी सीमाको बढ़ाते हुए निजसुखमें निमग्न होकर संसार–सागरमें डूब रहा हूँ। यह व्यथा ही इस अधम दासके हृदयमें तीव्रभावसे प्रकाशित हो रही है। उसके लिए ही यह विरह हो रहा है, तभी इस विरह–उत्सवमें क्रन्दन करते हुए श्रीगुरुपादपद्ममें प्रार्थना करता हूँ—

''आर कबे श्रीगुरुदेवेर करुणा हबे।
संसार वासना मोर कबे तुच्छ हबे॥
विषय छाड़िया कबे शुद्ध हबे मन।
कबे हाम हेरब श्रीवृन्दावन॥''

[अर्थात् और कब श्रीगुरुदेवकी करुणा अथवा कृपा होगी, कब मेरी संसारकी वासना दूर होगी। विषयोंका परित्यागकर कब मेरा मन शुद्ध होगा, कब मैं श्रीवृन्दावन धामका दर्शन करुँगा।]

(श्रीगौड़ीय–पत्रिका वर्ष–२१, संख्या–९ से अनुवादित)

[श्रीपाद जितकृष्ण प्रभु परमाराध्य नित्यलीलाप्रविष्ट ॐ विष्णुपाद श्रीश्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराजके निष्ठावान् सद्–गृहस्थ शिष्य थे। इनके द्वारा लिखित बहुतसे प्रबन्ध श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिके मुखपत्र 'श्रीगौड़ीय–पत्रिका' में प्रकाशित हुए हैं।]

वैष्णवों द्वारा प्रदत्त पुष्पाञ्जली–३

श्रीश्रीराधा–कृष्णके अप्राकृत प्रेमधनमें

'सङ्गके लिये प्रार्थना'

श्रील भक्तिविनोद ठाकुर स्वरचित ''कबे श्रीचैतन्य मोरे करिबेन दया'' नामक कीर्त्तनके एक पदमें वैष्णव–चरणोंमें निवेदन करते हुए कह रहे हैं–''**कृपा करि सङ्गे लह एइ अकिञ्चने** अर्थात् हे वैष्णव ठाकुर! इस अधमका निवेदन है कि आप कृपा करके इस अकिञ्चनको अपने सङ्गमें ले लें।'' वैष्णव परम दयालु होते हैं, उनकी कृपासे ही विष्णु–भक्ति प्राप्त हो सकती है। श्रील भक्तिविनोद ठाकुरजीके इस पदमें जो दैन्य भाव है, मैं उसी दैन्य भावका अनुसरण करते हुए श्रील भक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी महाराज जैसे परम भागवतसे यही प्रार्थना करता हूँ कि वे मुझे अपने सङ्गमें ले लें अर्थात् अपनी चित्तवृत्तिकी भाँति मेरी चित्तवृत्तिको भी भगवद्–चरणारविन्दमें नियुक्त कर दें।

वैष्णवोंके गुणगानमें ही सम्पूर्ण अस्तित्वकी सार्थकता

श्रील भक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी महाराजजीके विषयमें, उनकी स्मृतिमें कुछ कहना मेरे लिये अत्यन्त मङ्गलमय है। विष्णु–भक्तोंका गुणगान करना ही जीवनका परम आदर्श है। जिस जिह्वासे विष्णु–वैष्णवोंका गुणगान होता है, वही जिह्वा ही सार्थक है। श्रील महाराजजी एक ऐसे ही महात्मा थे, जिनके विषयमें गुणगान करनेसे वास्तवमें एक व्यक्ति केवल अपनी जिह्वाको ही नहीं, अपितु अपने सम्पूर्ण अस्तित्वको ही सार्थक कर सकता है। उनके स्मरण–मात्रसे ही गङ्गा–यमुनामें स्नान करना हो जाता है। गङ्गाके तो स्पर्शसे ही पवित्र हुआ जा सकता है, किन्तु श्रील महाराजजीके अगाध चरित्रके लेशमात्रका ही स्मरण करनेमात्रसे पवित्रताकी प्राप्ति होती है। यद्यपि मुझ जैसे दीन व्यक्तिके लिये उनके विषयमें स्मरण करना अत्यन्त कठिन

है, तथापि यदि वे मेरे प्रति कृपा करें, तो मैं उनके विषयमें कुछ कहनेका प्रयास कर सकता हूँ।

बृहद् व्यक्तित्वसे सम्पन्न

जब बृहद् (महान् व्यक्ति) कृपापूर्वक अपना सङ्ग प्रदान करता है, तभी अणु (क्षुद्र) बृहद्का सङ्ग एवं दर्शन करनेका सामर्थ्य प्राप्त करता है तथा तभी अणु होनेपर भी वह बृहदका परिचय दे सकता है। अतः मैं अणु होनेपर भी महाराजजी जैसे बृहद् व्यक्तित्वके विषयमें जो कुछ भी कह रहा हूँ, यह उन्हींकी ही कृपाका फल है।

धनी—श्रील महाराजजी

—श्रीमद् गोपानन्द वन महाराज

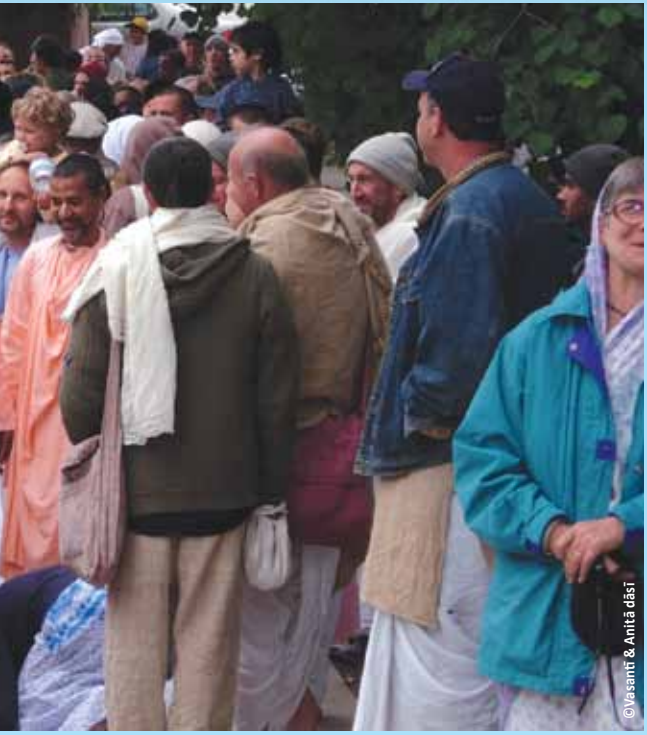

श्रीमन्महाप्रभुकी वाणीके विशुद्ध प्रचारक

श्रील भक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी महाराजजीने देश—विदेशमें प्रचार करके श्रीचैतन्य महाप्रभुके आदर्शको जगतमें स्थापित किया है। यह श्रील नारायण गोस्वामी महाराजजीकी महिमा ही है कि उन्होंने अनेकानेक अभक्तोंको भी भक्त बना दिया है। श्रील महाराजजीके आचार—विचार तथा वाणीसे आकर्षित होकर आये अनेकानेक उच्च—शिक्षित तथा भौतिक सुख—सुविधाओंसे सुसम्पन्न पाश्चात्य देशवासियोंको अभिमान—रहित वैराग्यपूर्ण जीवन निर्वाहित करनेके साथ—साथ शुद्ध रूपमें उनके भजनके प्रयासको देखकर मैं स्वयंको धिक्कार देता हूँ कि भारत—भूमिमें जन्म लेकर भी मुझमें इतनी भक्ति—भावना जागृत नहीं हुई, जितनी श्रील महाराजजीके प्रभावसे इनमें जागृत हो गयी है। वास्तवमें यह श्रील महाराजजीकी ही महिमा है कि उन्होंने पाश्चात्य देशवासियोंके समक्ष श्रीमन् महाप्रभुकी वाणीका विशुद्ध रूपमें कीर्त्तन करके उन्हें भक्तिमें पागल बना दिया है। श्रील महाराजजीकी महिमाका भली—भाँति वर्णन करना मेरे जैसे व्यक्तिके लिये असम्भव है। मेरे जैसे किसी व्यक्तिका तो कहना ही क्या, स्वयं भगवानने भी उद्धवजीसे कहा है कि तुम्हारे जैसे भक्तोंकी महिमाका गान करना मेरे लिये अत्यन्त कठिन है।

सभीके पारमार्थिक उत्थानमें सदैव प्रयासरत

मैंने अपने जीवनमें श्रील भक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी महाराजके आदर्शको बहुत निकट एवं बहुत सूक्ष्मरूपसे देखा है। वे सामान्य—से—सामान्य व्यक्तिके प्रति भी बहुत ही कृपा करते थे। वे छोटेको छोटा, अधमको अधम अथवा निकृष्टको निकृष्टके रूपमें नहीं देखते थे, बल्कि समभावसे सम्पन्न होनेके कारण वे अपनी पवित्र कृपादृष्टिसे सभीके पारमार्थिक उत्थानमें सदैव प्रयासरत रहते थे।

अभिमान रहित

श्रील भक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी महाराजजी मेरे जैसे क्षुद्र व्यक्तिका भी परम आदर करते थे। मुझसे बहुत ही प्रेम

रखते थे। अपने पास बुलाते भी थे। उन्होंने सम्पूर्ण विश्वमें श्रीचैतन्य महाप्रभुके मिशनका प्रचार किया एवं उनके साथ सब समय बहुत बड़े–बड़े व्यक्ति रहते थे, तथापि उन्हें कभी भी किसी प्रकारका कोई जड़ीय अभिमान स्पर्श तक भी करनेमें समर्थ नहीं हो पाया।

उदार–चरित्र सम्पन्न

एकबार श्रीरूप–सनातन गौड़ीय मठमें श्रील रूप गोस्वामीकी तिरोभाव–तिथिके उपलक्ष्यमें आयोजित किये जा रहे अनुष्ठानका निमन्त्रण देनेके लिये श्रील भक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी महाराज स्वयं हमारे मठ आये थे। जब वे गाड़ीमें बैठकर हमारे मन्दिरके गेटके सामनेसे श्रीमदन–मोहन मन्दिरकी ओर गये तो उस समय मैं अपने बरामदेमें बैठा था। जब गाड़ी पुनः घूमकर हमारे गेटके सामने आयी तो मैं बरामदेसे नीचे उतरकर गेटपर आया और मैंने श्रील महाराजजीसे पूछा कि आप कहाँ जा रहे हैं तो उन्होंने उत्तर दिया कि हम तो आपके पास ही आये हैं। यह सुनकर मैं अत्यन्त लज्जित हो गया और मैंने हाथ जोड़कर उनसे कहा कि मैं तो अत्यन्त क्षुद्र व्यक्ति हूँ, किन्तु मुझे बुलानेके लिये आप स्वयं आये हैं! यह सुनकर उन्होंने साथ–ही–साथ गाड़ीसे उतरकर मुझे गलेसे लगा लिया एवं उनके नेत्रोंमें कुछ प्रेमाश्रु भी आ गये। तत्पश्चात् उन्होंने कहा कि आप तो श्रील भक्तिहृदय वन गोस्वामी महाराजके सेवक हैं, मैंने आरम्भसे ही आपको उनकी सेवा करते हुए देखा है, श्रीगुरुके निष्कपट सेवक ही श्रीगुरुके पदपर आसीन होने योग्य होते हैं और वर्त्तमानमें आप उनके आसनपर विराजमान हैं, अतः आप हमारे मान्य हैं। यह सुनकर मैंने उनसे कहा कि महाराजजी! यह तो आपकी पवित्र भावना है। तब उन्होंने कहा कि आपको हमारे अनुष्ठानमें अवश्य ही आना है और जो विषय हमने रखा है, उसपर वक्तृता भी प्रदान करनी है।

भक्तिधनका आदर करनेवाले

एक अत्यन्त आश्चर्यकी बात है कि भगवद्–भक्त, साधुजन भगवान्‌की जिन कथाओंका कीर्त्तन करते हैं, अपनी अत्यन्त भोगासक्तिके कारण हमलोग उस ओर ध्यान नहीं देकर बाहरी विषयोंकी ओर ही दृष्टि लगाये रहते हैं। महापुरुष जगतके बाह्य विषयोंका त्याग करके भगवान्‌की भक्तिमें आसक्त होकर भगवान्‌की सेवा करते हैं, भक्ति–धनका आदर करते हैं, किन्तु हमलोग उनके द्वारा त्यक्त विषयोंका ही परम आदर करते हैं–यही हमारा दुर्भाग्य है। श्रीश्रीराधा–कृष्णके अप्राकृत प्रेमधनमें धनी श्रील महाराजजी सदैव हमें इस सम्बन्धमें उपदेश देते हुए कहते थे कि एकमात्र विषय भगवद्भक्ति ही है। बाह्य जगतके विषय तो विषके समान हैं। भगवद्भक्ति ही अमृत हैं। हम धन्य एवं कृतकृतार्थ हैं कि हमें ऐसे महापुरुषका सङ्ग प्राप्त हुआ। वे नित्यधामसे हमपर ऐसा आशीर्वाद करें कि जिससे हम केवल भगवद्भक्तिको ही अपना लक्ष्य बना सकें, मैं श्रील महाराजजीके श्रीचरणोंमें यही प्रार्थना करता हूँ।

[श्रीमद् गोपानन्द वन महाराज नित्यलीला प्रविष्ट ॐ विष्णुपाद श्रीश्रीमद्भक्तिहृदय वन गोस्वामी महाराजके आश्रित तथा वर्त्तमान समयमें उन्हींके द्वारा स्थापित मठके आचार्य तथा नियामक हैं।]

विरह–स्मरण

—श्रीमद् भक्तिकमल गोविन्द महाराज

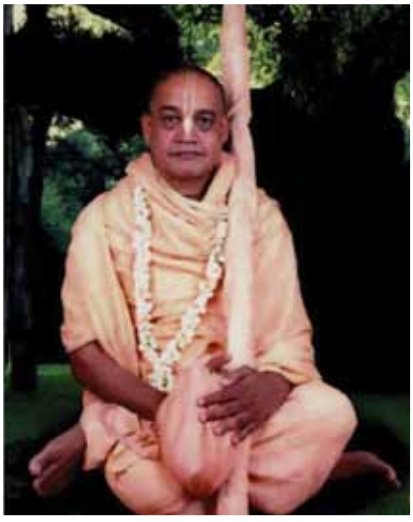

महान् श्रीरूपानुगाचार्य

मेरे दीक्षा गुरुपादपद्म नित्यलीलाप्रविष्ट ॐ विष्णुपाद अष्टोत्तरशतश्री श्रीमद्भक्तिवैभव पुरी गोस्वामी महाराज तथा मेरे शिक्षा एवं संन्यास गुरुपादपद्म नित्यलीलाप्रविष्ट ॐ विष्णुपाद अष्टोत्तरशतश्री श्रीमद्भक्तिजीवन जनार्दन गोस्वामी महाराजका नित्यलीलाप्रविष्ट ॐ विष्णुपाद अष्टोत्तरशतश्री श्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराजके साथ अत्यन्त स्नेहमय सख्य भाव था एवं ये परस्परमें अत्यन्त प्रेमपूर्वक व्यवहार किया करते थे। इसी कारण श्रीश्रीमद्भक्तिवैभव पुरी गोस्वामी महाराज एवं श्रील भक्तिजीवन जनार्दन गोस्वामी महाराजजीका श्रील नारायण गोस्वामी महाराजजीके साथ घनिष्टतापूर्ण सम्बन्ध था।

नित्यलीलाप्रविष्ट ॐ विष्णुपाद अष्टोत्तरशतश्री श्रील भक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी महाराजजी महान् श्रीरूपानुगाचार्य थे। उनकी गुरुनिष्ठा एवं गुरु–सेवा अत्यन्त प्रशंसनीय है।

सेवा–कार्योंमें सहयोग प्रदान करनेवाले

जब मेरे गुरुदेव श्रीश्रीमद्भक्तिवैभव पुरी गोस्वामी महाराजजी मथुरामें श्रीकेशवजी गौड़ीय मठमें पधारते थे, तो उस समय श्रील नारायण गोस्वामी महाराजजी अत्यन्त हर्षपूर्वक उनकी सेवा–शुश्रूषादि किया करते थे। श्रील गुरु महाराजजीने बहुत बार श्रील नारायण गोस्वामी महाराजको अपने साथ लेकर अनेक स्थानोंपर प्रचार एवं विग्रह–प्रतिष्ठादिका कार्य सम्पन्न किया था। अगस्त

१९७९ ई॰ में गोदावरी तटस्थित रायरामानन्द मिलन स्थान कुबुरमें श्रील महाराजजीने श्रीमान् शेषशायी प्रभु, श्रीमान् कानाई प्रभु, श्रीमान् शुभानन्द प्रभु, श्रीमान् प्रेमानन्द प्रभु आदि ब्रह्मचारियोंको साथ लाकर विग्रह–प्रतिष्ठा, यज्ञ एवं हरिकथा–कीर्त्तन आदि सेवा कार्योंमें सहयोग प्रदान किया था।

श्रील प्रभुपादकी शुद्धवाणीके प्रचारक

मुझे कई बार आन्ध्रप्रदेश स्थित राजमहेन्द्रीमें श्रील महाराजजीके संगका सौभाग्य प्राप्त हुआ था। उस समय श्रील महाराजजीने अपनी वैशिष्ट्यपूर्ण बहुत–सी हरिकथाओंका रसास्वादन कराया था। श्रील महाराजजीकी कथामें एक आकर्षण शक्ति थी। जो कोई भी उनके मुखारविन्दसे एक बार भी कथा श्रवण करता था, उसका चित्त स्वतः ही श्रील महाराजजीके प्रति आकर्षित हो जाता था। जिस समय श्रीश्रीमद्भक्तिवैभव पुरी गोस्वामी महाराज, श्रीश्रीमद्भक्तिजीवन जनार्दन गोस्वामी महाराज और श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी महाराज परस्परमें श्रील प्रभुपादजीकी एवं राधारानीकी महिमाका कीर्तन करते थे, तब ये तीनों ही क्रन्दन करते थे। ये महाजन ही वास्तवमें श्रील प्रभुपादकी शुद्धवाणीके प्रचारक थे।

दिव्य–सम्बन्धज्ञानका उदय करानेवाले

श्रील नारायण गोस्वामी महाराज बहरमपुर स्थित गौड़ीय मठके विग्रह प्रतिष्ठा अनुष्ठानमें भी पधारे थे और वहाँ पर भी उन्होंने विग्रहप्रतिष्ठा, कीर्तन–प्रवचनादिमें उत्साहपूर्वक योगदान किया था। उस विग्रह–प्रतिष्ठा–महोत्सवमें विश्व वैष्णव–सम्मेलनका आयोजन किया गया था और उसमें बड़े–बड़े साधु–संन्यासी पधारे थे। वह क्षण मेरे लिए अविस्मरणीय है, क्योंकि उस उत्सवमें श्रील महाराजने मुझे अपना संग प्रदानकर मुझपर विशेष कृपा की थी तथा उत्सवोपरान्त मुझे श्रील महाराजजीके साथ श्रीक्षेत्रमें आकर परिक्रमा करनेका सुअवसर भी प्राप्त हुआ था। उस परिक्रमामें मैंने श्रील महाराजजीके साथ अनेक स्थानोंका दर्शन तथा उन स्थानोंके महात्म्यका श्रवण किया था। श्रील प्रभुपादजीके आश्रितजनोंके उपरान्त श्रील नारायण गोस्वामी महाराजजी श्रीश्रीराधाकृष्णकी लीला–रहस्यादि कथाओंका श्रवण कराकर श्रोताओंके हृदयमें दिव्य सम्बन्धज्ञानका उदय करा देते थे। मैंने अपने दीक्षागुरु एवं शिक्षागुरुकी भाँति श्रील महाराजका भी सर्वदा गुरुवत् ही दर्शन किया है।

सम्पूर्ण विश्वमें श्रीमती राधारानीकी भाव–सम्बन्धी कथाओंका विस्तार करनेवाले

श्रील महाराजजी श्रील भक्तिजीवन जनार्दन गोस्वामी महाराजके साथ अत्यन्त घनिष्ठतापूर्ण व्यवहार करते थे और उनसे रसकथा विशेषकर राधारानीकी भाव–सम्बन्धी कथाओंका श्रवण करके उन भावोंको यत्नपूर्वक हृदयमें धारण करते थे। श्रील जनार्दन गोस्वामी महाराज प्रचारमें अधिक नहीं जाते थे। अतएव उनके हृदयगत भावोंको धारणकर श्रील नारायण गोस्वामी महाराजजीने उन भावोंका सम्पूर्ण विश्वमें विस्तार किया है। जब भी श्रील महाराजजी खड़गपुर जाते थे, तो श्रीमद्भक्तिजीवन

जनार्दन गोस्वामी महाराजजीसे तन्मय चित्त होकर श्रीमती राधारानीकी भाव–सम्बन्धी कथा श्रवण किया करते थे और जब श्रीमद्भक्तिजीवन जनार्दन गोस्वामी महाराजजी मथुरा आते थे, तो दोनों महाराज प्रेमपूर्वक व्रजमण्डलकी परिक्रमा करते हुए परस्परके भावोंका आदान–प्रदान किया करते थे। श्रील गुरु महाराजजी और श्रील नारायण गोस्वामी महाराजजीके परस्पर सम्बन्धको शब्दोंके द्वारा अभिव्यक्त नहीं किया जा सकता, क्योंकि प्रेमकी भाषा मौन होती है।

सद्‌शिक्षा प्रदान करनेवाले

श्रील नारायण महाराजजीकी हमारे श्रीचैतन्य–मिशनके साथ बहुत घनिष्ठता रही है। जब भी कोई ब्रह्मचारी किसी कारणवशतः असन्तुष्ट होकर हमारे मिशनसे श्रीकेशवजी गौड़ीय मठमें जाता था तो श्रील महाराजजी उसे सद्‌शिक्षा प्रदानकर पुनः मिशनमें भेज देते थे।

दीन–वत्सल

जब कभी श्रील नारायण महाराजजीसे मेरा मिलन होता था, वे मुझे आश्वासन देते हुए कहा करते थे—"धैर्य धारण करो! तुमपर श्रील जनार्दन महाराजजीकी प्रचुर कृपा है।" श्रील महाराजजी कई बार खड़गपुरमें श्रील जनार्दन गोस्वामी महाराजके दर्शनके लिए जाया करते थे, तब भी कभी–कभी उनके दर्शनका सौभाग्य होता था, वे श्रील जनार्दन गोस्वामी महाराजके तिरोभावके उपरान्त उनकी समाधिका दर्शनके लिए भी आये थे।

वैष्णव–ठाकुर

मुझे वे दिन भी स्मरण है जब मेरे गुरुपादपद्म श्रील भक्तिवैभव पुरी गोस्वामी महाराज अस्वस्थ लीला कर रहे थे। तब श्रील नारायण महाराजने जाकर उनसे कहा था कि अभी आपको बहुत कार्य करना बाकी है, ऐसी लीला मत कीजिए। उसके कुछ समय उपरान्त ही श्रील गुरु महाराज पूर्ण स्वस्थ होकर देश–विदेशोंमें अत्यन्त आश्चर्यजनक प्रचार करने लगे, ऐसा प्रचार मैंने उनके सम्पूर्ण जीवनकालमें भी नहीं देखा था।

स्नेहमयी दृष्टिसे युक्त

श्रील महाराजजीने जगत–मङ्गलके लिए बृहद्‌मृदङ्गके माध्यमसे जो कार्य किया है, उनका वह कार्य आनेवाली अनेकों पीढ़ियोंके लिए प्रेरणाका स्रोत होगा। मैं महाराजजीके सङ्गसे बहुत उपकृत हुआ हूँ। वे सब समय श्रीराधाकृष्णकी कथा श्रवण कराया करते थे। वे अपने आश्रित सभी भक्तोंके प्रति स्नेहमयी दृष्टि द्वारा ईक्षण किया करते थे।

श्रील नारायण गोस्वामी महाराजजीकी उत्साहमयी वाणीके द्वारा हमें बहुत प्रेरणा मिलती थी, आज हमारा परमदुर्भाग्यका दिन है कि ऐसे वैष्णव मुकुटमणि गौड़ीय जगतके रत्न हमारी आँखोंसे अदृश्य हो गये। आज उनका साक्षात् दर्शन नहीं होनेपर भी उनकी वाणी युग–युगान्तर तक हमारे हृदयको उद्‌वेलित करती रहेगी और भजनराज्यमें अग्रसर होनेके लिए प्रेरणा प्रदान करती रहेगी।

अन्तमें भावपूर्वक अश्रुधाराओंसे श्रील नारायण गोस्वामी महाराजजीके श्रीचरणकमलोंको पखारते हुए यही प्रार्थना करता हूँ कि मुझको अपने और श्रीश्रीराधाकृष्णके युगलचरणारविन्दोंमें अहैतुकी भक्ति प्रदान करते हुए उस रस समुद्रमें निमज्जित करें, जिसमें आपने सम्पूर्ण विश्वको डुबाया है।

[श्रीमद्भक्तिकमल गोविन्द महाराज नित्यलीलाप्रविष्ट श्रीश्रीमद्भक्तिवैभव पुरी गोस्वामी महाराजजीके दीक्षित और नित्यलीलाप्रविष्ट श्रीश्रीमद्भक्तिजीवन जनार्दन गोस्वामी महाराजजीके शिक्षा एवं संन्यास शिष्य हैं। श्रीमद्भक्तिकमल गोविन्द महाराज श्रीचैतन्य मिशनके अन्तर्गत समस्त मठोंके आचार्य हैं तथा श्रील भक्तिजीवन जनार्दन गोस्वामी महाराज द्वारा प्रतिष्ठित श्रीश्रीमद्भक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी गौड़ीय मठ खड़्गपुरके भी आचार्य हैं। श्रीमद्भक्तिकमल गोविन्द महाराजजी वर्त्तमान समयमें सम्पूर्ण विश्वमें श्रीमन्महाप्रभुकी वाणीका प्रचार कर रहे हैं।]

कृतज्ञतापूर्ण पुष्पाञ्जलि

—श्रीपाद भक्तिवेदान्त मङ्गल महाराज

मङ्गलाचरण

सर्वप्रथम मैं अपने परमाराध्य गुरुपादपद्म नित्यलीला प्रविष्ट ॐ विष्णुपाद अष्टोत्तरशतश्री श्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराजके श्रीचरणकमलोंमें अनन्तकोटि साष्टाङ्ग दण्डवत् प्रणामपूर्वक उनकी अहैतुकी कृपाकी भिक्षा माँगता हूँ। तदुपरान्त मैं अपने शिक्षागुरु परमपूज्यपाद नित्यलीला प्रविष्ट अष्टोत्तरशतश्री श्रीमद्भक्तिवेदान्त वामन गोस्वामी महाराज एवं श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी महाराजजीके श्रीचरणकमलोंमें अनन्तकोटि साष्टाङ्ग दण्डवत् प्रणाम करते हुए उनकी अहैतुकी कृपाकी प्रार्थना करता हूँ। समस्त वैष्णवोंके चरणोंमें दण्डवत् प्रणामपूर्वक सब वैष्णवोंकी कृपा प्रार्थना करता हूँ।

अतिमर्त्य महापुरुषके महिमा-गानमें अयोग्यता

परमपूज्यपाद श्रीभक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी महाराजजी अतिमर्त्य महापुरुष थे। मुझमें उनके अलौकिक चरित्रके सम्बन्धमें कुछ कहने योग्य विद्या-बुद्धि नहीं है। फिर भी गुरु-वैष्णवोंका गुणगान करनेसे जीवोंका त्राण होता है, इसी आशासे मैं कुछ कहनेका प्रयास कर रहा हूँ।

'तृणादपि' श्लोककी प्रतिमूर्त्ति एवं श्रीमन्महाप्रभुकी धारामें वास्तविक लखपति

श्रील नारायण गोस्वामी महाराजजीकी श्रीगुरुमें निष्ठा और श्रीहरिनाममें प्रगाढ़ रुचि थी। वे प्रतिदिन तीन बजे उठकर हरिनाम करते थे। वे श्रीमन्महाप्रभुके वास्तविक लखपति [प्रतिदिन भगवान्‌के एक लाख नामों अर्थात् चौंसठ मालाका जप करनेवाले] भक्त थे। वे मठके समस्त सेवा-कार्यों, ग्रन्थ-लेखन तथा प्रचार कार्यमें अत्यधिक व्यस्त रहनेपर भी प्रतिदिन एक लाख नाम अवश्य ही करते थे। श्रील महाराजजी श्रीकृष्णचैतन्य महाप्रभुके द्वारा कथित 'तृणादपि' श्लोककी प्रतिमूर्त्ति थे। एकबार किसीके अनुरोधसे श्रील महाराजजी हमें अपने साथ लेकर

किसी नये घरमें प्रचारके उद्देश्यसे गये और वहाँपर घरके सदस्योंने अज्ञ होनेके कारण श्रील महाराजजीका ठीकसे सम्मान नहीं किया, जिसे देखकर हम सभी उस घरके सदस्योंको कुछ कहना ही चाहते थे कि श्रील महाराजजीने हमें पहले ही कहना प्रारम्भ कर दिया कि जानते हो, वैष्णव समाजमें एक प्रवाद वचन है—**"वैष्णव होइते मने छिल बड़ साध। तृणादपि श्लोकेते पड़े गेलो बाध॥"** [अर्थात् यद्यपि मनमें वैष्णव बननेकी बड़ी अभिलाषा थी, किन्तु 'तृणादपि' श्लोकका पालन करनेकी बात सुनकर उस अभिलाषाके पूर्ण करनेमें बाधा उत्पन्न हो गयी अर्थात् 'तृणादपि' श्लोकमें दी गयी शिक्षाको पालन करनेमें असमर्थ होनेके कारण भजनमें बाधा उपस्थित हो गई।] अतः शान्त रहो, नये लोग हैं, जब कुछ परिचित हो जायेंगे, तब थोड़ी न ऐसा करेंगे। इस प्रकार केवल एक नहीं अनेकों उदाहरण हैं जिससे श्रील महाराजजीने अपने आचरणके द्वारा हमें 'तृणादपि' होनेकी शिक्षा दी है। अज्ञ व्यक्तियोंका तो कहना ही क्या, विज्ञ वैष्णव–सन्यासी इत्यादिके द्वारा भी श्रील महाराजजीके प्रति बड़ी–से–बड़ी बात हो जानेपर भी श्रील रूप गोस्वामी, श्रील सनातन गोस्वामी एवं श्रील रघुनाथ दास गोस्वामी आदि गोस्वामियोंके जीवन–चरित्रके पुंखानुपुंख वर्णनके द्वारा श्रील महाराजजी हम लोगोंको अनेकानेक प्रकारकी शिक्षाएँ प्रदान करते थे। इस प्रकारसे श्रील महाराजजी केवल मुखसे बोलकर ही नहीं, बल्कि स्वयं उसका आचरण करके हमें सदैव 'तृणादपि' श्लोकका पालन करते हुए हरि–गुरु–वैष्णवोंके आनुगत्यमें भजन करनेकी प्रेरणा प्रदान करते थे।

सेवा–विग्रह

एक समय था कि जब श्रील महाराजजी प्रतिदिन तीन–चार बार हरिकथाका परिवेषण करते थे। अपनी हरिकथाके माध्यमसे वे सबके मनमें हरि, गुरु और वैष्णवोंकी सेवा–वृत्तिको जागृत कर देते थे। श्रील महाराजजी स्वयं सब समय हरि–गुरु–वैष्णवोंकी सेवामें निमग्न रहा करते थे एवं अन्य सब मठवासियोंको भी सब समय हरि–गुरु–वैष्णवोंकी सेवामें निमग्न रहनेके लिए उपदेश दिया करते थे।

तृणादपि श्लोकके यथार्थ अर्थोंमें प्रतिष्ठित

श्रील महाराजजी गुरु–वैष्णवोंकी मर्यादा तथा आदेश पालन करनेके लिए अपने जीवनकी भी परवाह नहीं करते थे। एक समयकी बात है कि श्रीदेवानन्द गौड़ीय मठके बाहर श्रीनरहरि सेवाविग्रह प्रभु एवं श्रील नरोत्तमानन्द ब्रह्मचारी सब्जी–दूध बेचनेवाले ग्वालोंसे कुछ भाव–मोल कर रहे थे। वहाँके ग्वाले बड़े दुर्दान्त

स्वभावके थे। बात–ही–बातमें वे झगड़ने लगे और किसी प्रकार श्रीनरोत्तमानन्द प्रभुके सिरमें कुछ ऐसी चोट लगी जिससे रक्त निकलने लगा। कुछ शोरगुल सुनकर श्रील महाराजजी बाहर आये और श्रीनरोत्तमानन्द प्रभुके सिरसे रक्त निकलता देख आपेसे बाहर हो गये। उन्होंने मठके प्राङ्गणसे बाँसका टुकड़ा उठाकर उस उद्दण्ड ग्वालेकी पीठपर ऐसा मारा कि वह बाँस टूट गया और ग्वाला गिर पड़ा। बादमें श्रीनरहरि सेवाविग्रह प्रभुने कुशलतासे उस गम्भीर स्थितिको संभाल लिया। यह वास्तवमें श्रील महाराजजीकी 'तृणादपि सुनीचता' ही थी, क्योंकि वे अपने साथ अभद्र व्यवहार होनेपर तो सहनशील रहते थे, किन्तु वैष्णवके साथ अपव्यवहार करनेवाले व्यक्तिकी क्रियाको सहन नहीं करते थे।

वैष्णवोचित गुणोंसे विभूषित

श्रील महाराजजीमें महान वैष्णवोचित गुणसमूह थे। वैष्णवोंमें कृपालुता, सत्यसारता, अकृतद्रोह आदि छब्बीस प्रकारके जो गुण कहे गये हैं, वे सब गुण श्रील महाराजजीमें परिपूर्ण मात्रामें थे। वे इतने कृपालु थे कि दूसरोंका कल्याण तथा उद्धार करनेके लिए उन्होंने अस्वस्थ अवस्थामें भी देश–विदेशमें जाकर हरिकथा–कीर्त्तन एवं ग्रन्थ लेखन सेवाकार्य किया। जब उन्होंने जैवधर्म ग्रन्थका हिन्दी–अनुवाद किया था, तब श्रील गुरुमहाराज बहुत प्रसन्न हुए थे। यद्यपि श्रील महाराजीके द्वारा किये गये शुद्ध–प्रचारकी सफलताको श्रील गुरुमहाराजजी अवश्य ही देख रहे होंगे, किन्तु विशेषकर यदि वे साक्षात् रूपमें श्रील महाराजजीके द्वारा प्रकाशित विशुद्ध भक्तिमय–ग्रन्थोंको देखते तो न जाने कितना अधिक प्रफुल्लित होते।

श्रील महाराजजीके अदोषदर्शी एवं पतितपावन गुणको मैंने स्वयं भी बहुत निकटसे अनुभव किया है। महा–अपराधी व्यक्ति भी यदि दीन–हीन भावसे क्षमा–प्रार्थना करता था, तो श्रील महाराजजी तत्क्षणात् उसे क्षमा कर देते थे। प्रमाण स्वरूप मुझ जैसे महा–अपराधी व्यक्तिके द्वारा बारम्बार किये जानेवाले समस्त अपराधोंको क्षमा करके भी वे मुझे पुनः–पुनः अपने अभयचरणोंमें आश्रय प्रदान करते थे।

भक्त–बान्धव

श्रीधाम नवद्वीपमें रहते समय एक समय मैं अस्वस्थ रहने लगा। श्रील गुरुमहाराजने मुझे स्वहस्त–लिखित एक पत्र देकर पूज्यपाद महाराजजीके पास मथुरा भेजा। मैं श्रीकेशवजी गौड़ीय मठमें पहुँचा तथा पूज्यपाद महाराजजीको दण्डवत् प्रणाम करनेके उपरान्त उन्हें श्रील गुरुमहाराजजीका पत्र दिया। श्रील महाराजजी गुरुमहाराजजीके हाथोंसे लिखित उस पत्रको पढ़कर बहुत प्रसन्न हुए और मुझसे कहा कि जानते हो इस पत्रके माध्यमसे गुरुजीने तुम्हें मुझे दे दिया है। इसके बाद उन्होंने मुझे मेरी चिकित्साके लिए दिल्लीमें अपने परिचित किसी एक व्यक्तिके पास भेजा। पूज्यपाद महाराजजीके स्निग्ध व्यवहार तथा उनकी मेरे प्रति स्वाभाविक प्रीति एवं मेरे स्वास्थ्यके प्रति उनकी चिन्ता–भावनाको देखकर मैंने अनुभव किया कि मैं तो उत्तरोत्तर उन्हींके श्रीचरणकमलोंके

प्रति आकर्षित होता जा रहा था। मैंने एक पत्रके माध्यमसे श्रील महाराजजीके प्रति अपनी कृतज्ञता व्यक्त करते हुए कहा था कि आपने मेरी चिकित्सा कराके मुझपर जो उपकार किया है, उसके लिए मैं आपका चिर ऋणी रहूँगा। यदि मैं अपने शरीरके चमड़ेसे आपके चरणोंकी पादुका भी बना दूँ, तब भी मैं आपके ऋणसे उऋण नहीं हो पाऊँगा।

करुणामय श्रील महाराजजी

पूज्यपाद महाराजजी किसीके भी द्वाराकी गयी अल्पसेवाको भी बहुत मानते थे। उदाहरण स्वरूप—पूज्यपाद महाराजजीने जब मुझे पहली बार भिक्षा माँगनेके लिये भेजा, तब मेरी भिक्षा माँगनेकी लेशमात्र भी इच्छा नहीं थी। किन्तु, श्रील महाराजजीने भिक्षा माँगकर लानेके लिये कहा था, इसलिए अनकी आज्ञाका पालन करनेके लिए मैं केवल दो–तीन घरोंसे ही भिक्षा माँगकर लौट आया। भिक्षामें मुझे बहुत कम आटा मिला। जब मैं आटा लेकर श्रील महाराजीके पास पहुँचा तब महाराजजीने उस आटेको देखकर कहा कि तुम तो भिक्षाके पहले दिन ही बहुत आटा भिक्षा करके ले आये हो। प्रतिदिन इसी प्रकार भिक्षा करके ले आना, इसीसे ही हमारा मठ चलेगा। पूज्यपाद महाराजजीकी इस बातको सुनकर मेरा उत्साह बढ़ गया एवं मैंने उन्हींकी आज्ञाका पालन करते हुए बहुत लम्बे समयतक इस प्रकारकी भिक्षाकी। श्रील महाराजजी बहुत बार कहा करते थे कि भिक्षा करना कोई घृणित कार्य नहीं है, बल्कि यह तो शुद्ध साधुओंकी बहिर्मुख जगतवासियोंके प्रति करुणाका निदर्शन करानेवाली वन्दनीय वृत्ति है। जहाँ भी भिक्षा माँगनेके लिये जाओगे, वहाँ जितना सम्भवपर हो, हरिकथा–हरिकीर्त्तन करना। बादमें श्रील महाराजजीने मुझे नये–नये स्थानोंमें जाकर प्रचार करने तथा हरिनाम–सङ्कीर्त्तन करने आदिकी भी शिक्षा प्रदान की। मुझसे जितना हो सका, मैंने अपनी योग्यतानुसार महाराजजीकी शिक्षाओंको धारण करनेका प्रयास किया। यह सब उनके द्वारा प्रथम दिनकी भिक्षा करनेके बाद मुझे दिये गये उत्साहका ही फल है।

सबका पालन–पोषण करनेवाले

मैं विद्या–बुद्धि–शक्ति–सामर्थ्य–हीन अत्यन्त पतित जीव हूँ, अतः केवल पारमार्थिक दृष्टिकोणसे ही नहीं बल्कि शारीरिक दृष्टिकोणसे जिस किसी प्रकारसे भी उन्हींकी कृपासे ही जीवित हूँ। जिस प्रकार भगवान् नारायण [‘नर’ अर्थात् मनुष्य और ‘अयण’ अर्थात् आश्रय] सबको आश्रय प्रदान करके उनका पालन–पोषण करते हैं, उसी प्रकार श्रील महाराजजीने सब प्राणियोंको प्रेमभक्ति प्रदान करके उनका पालन–पोषण किया है। यथार्थतः श्रील महाराजजी भगवान् नारायण स्वरूप ही हैं।

भागवतीय गुरु–परम्पराके विचारोंको सुदृढ़ करनेवाले

श्रील महाराजजीने ‘प्रबन्ध–पञ्चकम्’ नामक ग्रन्थकी रचना करके गौड़ीय मठवासियोंके गौरवको उज्ज्वल किया है। अपनी प्रभावशाली लेखनीके द्वारा उन्होंने गौड़ीय मठकी गुरु–परम्परा एवं उनके द्वारा धारण किये जानेवाले गेरुएँ वस्त्रोंको घृणाकी दृष्टिसे देख उनके प्रति कटाक्ष

करनेवाले निन्दुक बाबाजी लोगोंके दलका मुख बन्द कर दिया है। यह एक असाधारण कार्य है।

स्नेहकी प्रतिमूर्त्ति

श्रील महाराजजीका एक ऐसा विशेष गुण था कि जो कोई भी व्यक्ति उनसे एकबार हरिकथा श्रवण कर लेता, वह उनके प्रति आकृष्ट हुए बिना नहीं रह पाता था। श्रील महाराजजी प्रत्येक व्यक्तिके साथ ऐसा मधुर व्यवहार करते थे कि हर व्यक्ति यही सोचता था कि महाराजजी मुझसे ही सबसे अधिक स्नेह करते हैं। श्रील महाराजजी अन्य किसी मठ एवं अन्य किसी गुरुके शिष्यको भी अपने निजशिष्यकी भाँति प्रीतिपूर्वक रखते थे तथा कभी कोई भेदभाव नहीं करते थे।

गुरु-भाईयोंके प्रति प्रीति

श्रील महाराजजी अपने समस्त गुरुभाईयोंको मठमें रखनेका प्रयास करते थे एवं उन्हें अपने गुरुजीका वैभव मानकर सभी गुरुभाइयोंका यथायोग्य सम्मान और आदर करते थे। यदि कोई गुरुभाई किसी कारणवश मठ छोड़कर बाहर जाकर भजन करने लगता तो श्रील महाराजजी कभी तो स्वयं और कभी किसी भक्तके माध्यमसे उसे पुनः मठमें ले आते और एक साथ मिलकर भजन और गुरु सेवा करनेका उपदेश देते। श्रील महाराजजी समझाते हुए कहते—"**आश्रय लइया भजे, तारे कृष्ण नाहि त्यजे, आर सब मरे अकारण** अर्थात् जो गुरु–वैष्णवका आश्रय लेकर भजन करते हैं, श्रीकृष्ण उन्हें नहीं त्यागते, किन्तु गुरु–वैष्णवोंके चरणाश्रयको छोड़कर जो भजन करनेका प्रयास करता है, वह व्यर्थ ही मारा जाता है अर्थात् उसका साधन–भजन इत्यादि भस्ममें घी डालनेकी भाँति व्यर्थ हो जाता है।" इस प्रकार श्रील महाराजजी बहुत प्रकारके शास्त्रीय प्रमाण देते हुए स्नेहपूर्वक कहते—"तुम मठमें रहकर गुरु–वैष्णवोंकी सेवा करो। इसीसे तुम्हारा आत्मकल्याण होगा। गुरु–निष्ठा ही भजनकी रीढ़ है।"

श्रील भक्तिवेदान्त वामन गोस्वामी महाराज एवं श्रील भक्तिवेदान्त त्रिविक्रम गोस्वामी महाराजजीके साथ श्रील महाराजजीके प्रीतिपूर्वक सम्बन्धके विषयमें तो प्रायः सभी जानते हैं, किन्तु वास्तवमें श्रील महाराजजीकी अपने सभी गुरु–भाईयोंके प्रति ही अत्यधिक ममता थी। इसका साक्षात् उदाहरण हमने देखा जब हमारे गुरुभाई श्रीमान् कालाचाँद प्रभु अस्वस्थ हुए। श्रील महाराजजीने विदेशमें प्रचारकार्यमें अत्यधिक व्यस्त रहते हुए भी बहुत बार फोनके माध्यमसे उनके स्वास्थ्यकी जानकारी ली और उनकी चिकित्साके लिये श्रील महाराजजी लाखों रुपये व्यय करनेसे भी पीछे नहीं हटे।

जिस समय श्रीमान् कालाचाँद प्रभुने सन्ध्याके समय शरीर छोड़ा उस समय श्रील महाराजजी हरिकथाका परिवेषण कर रहे थे। हरिकथाके उपरान्त जब श्रील महाराजजीको यह संवाद दिया गया, तब महाराजजीने स्वयं नीचे आकर श्रीमान् कालाचाँद प्रभुके मस्तकपर तिलक लगाया तथा उनकी चार परिक्रमाएँ कीं एवं उपस्थित भक्तोंको भी ऐसा करनेके लिये कहा। श्रील महाराजजीका यह आदर्श मेरे लिये वन्दनीय है।

श्रील महाराजजीका विशेष योगदान

"यदि नारायण नहित, तबे कि हइत,
केमने धरिताम दे?
रूप–रघुनाथेर महिमा, (पाश्चात्य) जगते जानात के?
गौड़ीय–विचार, गौड़ीय–आचार,
प्रवेश–चातुरी–सार।
पाषण्डेर–दलन, अपसिद्धान्तेर खण्डन,
शक्ति छिल वा कार॥
गाओ पुनः पुनः, (श्रील) नारायणेर गुण,
सरल हइया मन।
ए भव सागरे, एमन परम दयाल,
ना देखि जे एकजन॥
(शिक्षा) गुरुदेव बलिया, ना गेनु गलिया,
केमने धरिनु दे?
मङ्गलेर हिया, पाषाण दिया,
केमने गड़ियाछे॥

अर्थात् यदि श्रील भक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी महाराजजी इस जगतमें आविर्भूत नहीं होते, तो क्या होता तथा मैं किस प्रकारसे यह जीवन धारण कर पाता? कौन श्रील रूप गोस्वामी एवं रूपानुग श्रील रघुनाथ दास गोस्वामीकी परमोच्च महिमा तथा उन्नत–उज्जवल प्रेमकी चरम सीमाको पाश्चात्य जगतवासियोंको बतलाता? यदि श्रील महाराजजी नहीं होते तो श्रीब्रह्म–मध्व–गौड़ीय सम्प्रदायके निगूढ़ आचार–विचारमें कौन प्रवेश कर पाता? वास्तवमें उन विचारोंमें प्रवेश करना ही बुद्धिमताकी चरम सीमा है। वर्त्तमान कालमें पाषण्डियोंका दलन तथा वैष्णव समाजमें प्रविष्ट अपसिद्धान्तोंका खण्डन जिस प्रकार श्रील महाराजजीने किया है, वैसा करनेका सामर्थ्य किसका था।

हे भक्तों! परम महिमासे युक्त ऐसे श्रील भक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी महाराजजीके भुवनपावन गुणोंका पुनः पुनः निष्कपट होकर गान करो, क्योंकि इस भवसागरमें ऐसे परम दयालु वैष्णव और कोई नहीं हैं। अपने शिक्षा गुरुदेव श्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी महाराजका नाम उच्चारण करनेपर भी मेरा पाषाण सदृश हृदय द्रवीभूत नहीं हुआ। हाय! यह मङ्गल न जाने किस प्रकार अपने प्राण धारण किये हुए है।

अभिन्न नित्यानन्द श्रील महाराजजी

श्रील गुरुमहाराजजीके अप्रकट होनेके बाद मैं श्रील महाराजजीके आश्रयमें ही रहा एवं मैंने उन्हींके आदेश–निर्देशको पालन करनेका प्रयत्न किया।

जगाइ माधाइ हैते मुञि से पापिष्ठ।
पुरीषेर कीट हैते मुञि से लघिष्ठ॥

मैं जगाइ और माधाइसे भी अधिक पापी हूँ और विष्ठाके कीड़ेसे भी तुच्छ हूँ।

मोर नाम शुने येइ, तार पुण्य क्षय।
मोर नाम लय येइ, तार पाप हय॥

(चैच्॰ आदि ५/२०५–२०७)

जो मेरा नाम सुनता है, उसके पुण्य क्षय हो जाते हैं। जो मेरा नाम उच्चारण करता है, उसे पाप लगता है।

एमन निर्घृण–मोरे केबा कृपा करे।
एक श्रीलनारायण गोस्वामी बिनु जगत् भितरे॥

ऐसे घृणित व्यक्तिपर इस जगत्में एक श्रील नारायण गोस्वामी महाराजके अतिरिक्त और कौन कृपा करेगा?

मुझपर श्रील महाराजजीकी असीम कृपा है, किन्तु दुर्भाग्यवशतः मैं उनकी उस कृपाको धारण नहीं कर पा रहा हूँ।

अदोषदर्शी श्रील महाराजजी सब समय मुझे क्षमा करते रहे। आज भी मैं उनके अभय चरणकमलोंमें कातर स्वरमें व्याकुल भावसे यही प्रार्थना करता हूँ कि मैं भजनहीन अतिअर्वाचीन भक्तिके लेशमात्रको भी नहीं जानता हूँ, फिर भी श्रील महाराजजी मेरे समस्त प्रकारके दोष–अपराध क्षमा करके मुझे आत्मसात करके वृन्दावनमें सिद्धदेह देकर श्रीरासमण्डलमें युगल सेवामें नियुक्त करें। यह कहकर मैं अपनी वाणीरूपी पुष्पाञ्जली उनके श्रीचरणकमलोंमें प्रदान करता हूँ।

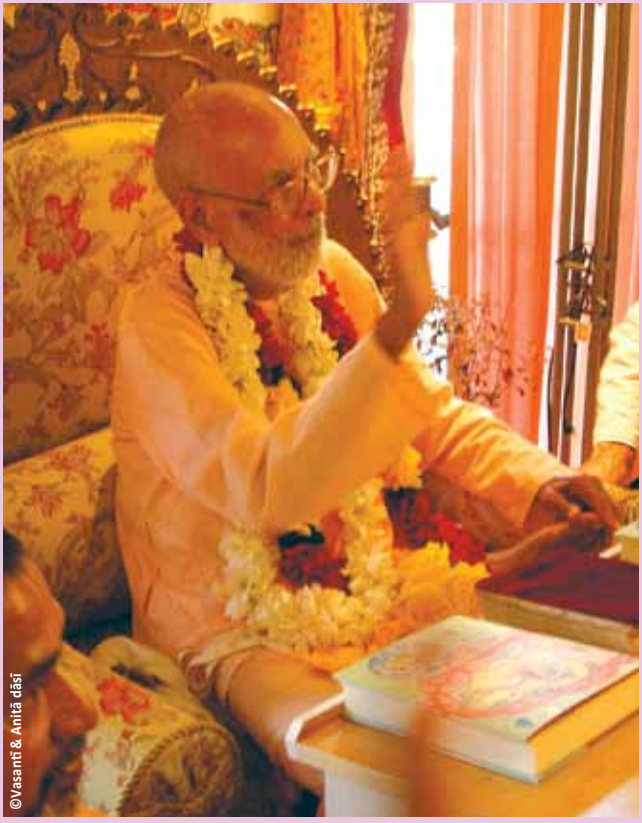

[श्रीपाद भक्तिवेदान्त मङ्गल महाराज परमाराध्य नित्यलीलाप्रविष्ट ॐ विष्णुपाद श्रीश्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराजके चरणाश्रित हैं तथा उन्हींके आदेशसे गुरुदेव श्रील भक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी महाराजके आनुगत्यमें इन्होंने श्रीकेशवजी गौड़ीय मठमें बहुत लम्बे समयतक अपनी सेवाएँ समर्पित की हैं। वर्त्तमानमें व्रजमण्डलके ही विभिन्न स्थानोंपर हरिनाम–सङ्कीर्त्तनका प्रचार करते हुए विचरण करते हैं]

पूज्यपाद श्रील नारायण महाराजजी—सर्वश्रेष्ठ दानी एवं आदर्श महापुरुष

—श्रीपाद भक्तिप्रसाद विष्णु महाराज

इस जगतमें एकमात्र श्रीकृष्ण–कथारसका पान करवानेवाले लोग ही महान् दानी होते हैं। वैष्णव–सङ्गमें जन्म–जन्मान्तरका अज्ञान दूर होनेपर जीवका वास्तविक–स्वरूप प्रकाशित होता है। उस समय जीवके समस्त अनर्थ, दुराचार, पापाचार इत्यादि दूर हो जाते हैं। अनर्थ दूर होनेके साथ–ही–साथ उनके दुःख, कष्ट, दुर्गति तथा बन्धन भी समाप्त हो जाते हैं। क्षुद्र जीव महान् आत्मा बन जाता है। उसका जीवन हरिभक्तिमय हो जाता है एवं जगत्का तो कहना ही क्या, स्वयं भगवान् जगन्नाथ भी उसके वशीभूत हो जाते हैं।

'भूरिदा जनाः' की उपाधिसे विभूषित

केवलमात्र वैष्णव–आचार्यके अतिरिक्त एक क्षुद्र, नीच, दुःखी एवं अज्ञानी बद्धजीवका सर्वोत्तम मङ्गल कौन कर सकता है? जगत्के माता–पिता, बन्धु–बान्धव इत्यादि हमें संसार–बन्धनमें डाल सकते हैं, दुःखी कर सकते हैं, हमारा सर्वनाश कर सकते हैं, गलत आचरणकी शिक्षा दे सकते हैं, गलत खान–पान, व्यवहार आदिकी शिक्षा दे सकते हैं, किन्तु हमें वास्तविक सुख–शान्तिका मार्ग नहीं बतला सकते। सुख–शान्तिका मार्ग तो अपनी वीर्यवती हरिकथाके माध्यमसे केवलमात्र साधुजन ही प्रशस्त करते हैं। इसी कारण श्रीकृष्णकथाका पान करानेवाले ही इस जगतमें हमारे सबसे महान् मित्र हैं। इसी शृंखलामें अर्थात् जगत् जीवोंके ऐसे महान्

बान्धवोंमें परम पूजनीय श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी महाराजजी एक विशेष महान् दानी आचार्य रहे। उन्होंने सम्पूर्ण विश्वमें श्रीगौराङ्ग महाप्रभुके द्वारा आचरित एवं प्रचारित शुद्ध–भक्तिरसकी धाराकी वर्षा करके व्रजगोपियोंके द्वारा कथित **'भुवि गृणन्ति ते भूरिदा जना:'**[१] (श्रीमद्भा॰ १०/३१/९) की उपाधिसे विभूषित हैं। श्रील नारायण महाराजजीके प्रचारने वर्तमान कालके गौड़ीय–रूपानुग–विचारधारामें प्रविष्ट भक्तोंको एक नयी उमङ्ग, एक नया उत्साह तथा एक ऐसा दृढ़ विश्वास प्रदान

किया है, जिससे वे श्रील महाराजजीके आचार–विचार द्वारा प्रदर्शित मार्गके अतिरिक्त अन्यान्य मार्गोंपर कभी किसी भी परिस्थितिमें नहीं चलेंगे।

१ हे कृष्ण! जो व्यक्ति इस संसारमें तुम्हारी लीलाकथाका कीर्त्तन करता है, वही सर्वश्रेष्ठ दाता है।

श्रील महाराजजीका मेरे गुरुमहाराजजीसे सम्बन्ध

श्रील भक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी महाराजजी मेरे गुरुमहाराज नित्यलीलाप्रविष्ट ॐ विष्णुपाद श्रीश्रीमद्भक्तिदयित माधव गोस्वामी महाराजजीकी आविर्भाव तिथिके उपलक्ष्यमें मठके बहुतसे ब्रह्मचारियोंके साथ हमारे

वृन्दावनके मठमें पधारते थे तथा हमारे गुरु महाराजजीके प्रति अपने गुरुपादपद्मवत् (समान) श्रद्धा पुष्पाञ्जलि समर्पित करते थे। वे सर्वप्रथम श्रील गुरुमहाराजके गलदेशमें पुष्पमाला प्रदान करनेके उपरान्त साष्टाङ्ग दण्डवत प्रणाम करके उनके श्रीचरणकमलोंका स्पर्श करते थे।

जब श्रीवृन्दावनमें श्रीरूप–सनातन गौड़ीय मठ नहीं बना था, उन कई वर्षों तक श्रील नारायण महाराजजीने श्रीचैतन्य गौड़ीय मठ (वृन्दावन) में रहकर ही व्रजमण्डलके अन्तर्गत वृन्दावनकी परिक्रमा की थी। उस समय मुझे महाराजजीकी मधुर–सरल, किन्तु सर्वोच्च विचारोंसे परिपूर्ण हरिकथाको श्रवण करनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ था। श्रील महाराजजीकी प्रत्येक बातमें, उनकी प्रत्येक क्रियामें कुछ–न–कुछ शिक्षाकी प्राप्ति होती थी। उन्हीं दिनोंमें मुझे उनकी सेवा करनेका भी अवसर प्राप्त होता था। एक समय हमारे वृन्दावन स्थित मठमें अपनी परिक्रमा पार्टीके साथ वासकालमें किसी एक भक्तने श्रील

महाराजजीसे कहा कि ''महाराजजी! आप लोग वृन्दावनमें अपना कोई मठ क्यों नहीं बनाते?'' इसके उत्तरमें श्रील महाराजजीने कहा ''ओह! यह तो हमारा ही मठ है, मैंने तो कभी सोचा ही नहीं कि हमें वृन्दावनमें अपना कोई और मठ बनानेकी आवश्यकता है।'' इस प्रकारसे वे सर्वदा ही एक उदार–दृष्टिकोण और विचार–धारासे ओत–प्रोत रहते थे।

बृहद–मृदङ्ग एवं जीवन्त मृदङ्गके प्रस्तुतकर्त्ता

श्रील भक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी महाराजजीने वैष्णव आचार्योंकी टीकाओं सहित श्रीमद्भगवद्गीता, श्रीमद्भागवतम्, श्रीगीतगोविन्द आदि ग्रन्थोंके साथ–साथ श्रील रूप गोस्वामी, श्रील सनातन गोस्वामी, श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर तथा श्रील भक्तिविनोद ठाकुरके द्वारा रचित ग्रन्थोंका राष्ट्रभाषा हिन्दीमें अनुवाद तथा उन ग्रन्थोंको

अत्यधिक आकर्षक कलेवर प्रदान करके श्रील प्रभुपादके बृहद् मृदङ्गके कार्यको अति सुष्ठु रूपसे अग्रसर किया है। इस महान कार्यसे उन्होंने गौड़ीय–वैष्णव–सम्प्रदायकी बहुत महान सेवा की है।

मथुरामें वास करते समय श्रील महाराजजीने अनेकानेक सौभाग्यशाली मठवासियोंको यत्नपूर्वक जैवधर्म, श्रीबृहद्भागवतामृत, उपदेशामृत, श्रीमनःशिक्षा तथा न जाने कितने ही ग्रन्थोंका आदिसे अन्त तक अध्ययन कराया, उन्हें श्लोक तथा कीर्त्तन कण्ठस्थ कराये तथा अपने आचरणसे ही उन्हें दैनन्दिन बहुतसी शिक्षाएँ प्रदान की हैं। इस प्रकार श्रील महाराजजीने श्रीमन् महाप्रभुकी वाणीकी सेवा करनेके उद्देश्यसे अनेक जीवन्त–मृदङ्ग प्रस्तुत किये, जो सदैव उनके द्वारा कीर्त्तनवाणीका ही अनुकीर्त्तन करते हुए श्रीमन्महाप्रभुकी सेवा करते रहेंगे।

निर्भीक होकर सत्यकथाका परिवेषण करनेवाले

श्रील भक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी महाराजजीका सम्पूर्ण व्रजमण्डलमें बहुत ही प्रभाव रहा। व्रजमण्डलके विद्वान, पण्डे, धनी तथा दरिद्र सभी जनसाधारण ही श्रील महाराजजीके मधुर व्यवहारसे मुग्ध थे। श्रील महाराजजीके प्रभावसे श्रील प्रभुपादकी धारा आज भी गर्वपूर्वक सम्पूर्ण व्रजमें अपना वर्चस्व बनाये हुए है। श्रील महाराजजीने अनेकानेक अनभिज्ञ लोगोंको बाबाजी लोगोंके चङ्गुलसे छुड़ाया है। श्रील महाराजजीने व्रजमण्डलके सहजिया बाबाजी लोगोंके दलको सम्प्रदाय–गौरवबल, शास्त्रबल, विद्याबल, जनबल इत्यादि सब प्रकारसे परास्त करके प्रभाव स्थापित किया है। श्रील महाराजजी जब राधाकुण्डके तटपर उपस्थित होकर अत्यधिक आवेशमें श्रील प्रभुपादके विचारोंका अनुसरण करते हुए हरिकथा करते थे, तब किसी सहजियाका सामर्थ्य नहीं होता था कि वह श्रील महाराजजीके सामने आ सके। वे सभी जहाँसे भी सम्भव होता, सुनते, किन्तु निरुत्तर होनेके कारण छिपे ही रहते। दूसरी ओर सरल हृदयवाले सज्जन भक्तजन श्रील महाराजजीकी निर्भीक सत्य हरिकथाको श्रवणकर मन्त्र–मुग्ध हो जाते। वास्तवमें श्रील महाराजजीमें एक बहुत ही विशेष गुण था कि वे स्थान–काल और पात्रके अनुसार किस प्रकारकी कथा बोलनी चाहिये, इस

विषयमें परम निपुण थे। अपने आचरण एवं विचारोंसे श्रील महाराजजीने गौड़ीय मठके बाहरी विरोधी तथा आन्तरिक विराधी इन–दोनोंका ही दलन किया है।

इस दीनके प्रति उनका उपदेश

श्रील महाराजजीका मेरे ज्येष्ठ गुरुभ्राता श्रील भक्तिविज्ञान भारती गोस्वामी महाराजजीसे बहुत घनिष्ठ सम्बन्ध था। वे आपसमें बहुतसे विषयोंकी चर्चा करते थे। एकबार जब मैं श्रील भारती गोस्वामी महाराजजीके साथ उनके दर्शन करनेके लिये श्रीरूप–सनातन गौड़ीय मठमें गया तो उन्होंने मुझसे कहा–''राम प्रभु (श्रीपाद भक्तिप्रसाद विष्णु महाराजजीका ब्रह्मचारी अवस्थाका नाम) प्रतिदिन एकलाख हरिनाम करना। ऐसा कर पानेसे तुम जीवनमें कभी किसी भी विपत्तिमें नहीं पड़ोगे''। उनके यह वचन मुझे आज भी स्मरण हैं तथा मैं यथासम्भव उनके इस आदेशका पालन करनेकी चेष्टा भी करता हूँ।

आदर्श, परम उदार, निष्ठावान् महापुरुषका अभाव

श्रील महाराजजी परम उदार थे। उनकी यह शुभेच्छा थी कि सभी गौड़ीय मठोंके लोग श्रीमन् महाप्रभुकी सेवाके उद्देश्यसे अपने–अपने क्षुद्र स्वार्थोंको भूलकर एकत्र होकर हरिनाम–सङ्कीर्त्तन रूपी भक्तिधर्मका प्रचार करें। बहुतबार उन्होंने सभी गौड़ीय मठोंके द्वारा एक ही पञ्जिकाके बनानेकी अभिलाषा भी व्यक्त की थी। आज ऐसे आदर्श, निष्ठावान् भजनशील महापुरुषोंके एक–एक करके इस जगतसे अप्रकट होनेपर उनके अभावमें, न जाने हम किस प्रकार भक्तिराज्यमें अग्रसर हो पायेंगे, यही सबसे बड़ी चिन्ताका विषय है। ग्रन्थोंके वर्त्तमान रहनेपर भी आदर्श चरित्र, आचरणशील वैष्णवोंके सङ्गके अभावमें शुद्ध भक्तिमार्गपर चलपाना बहुत ही कठिन कार्य है। बहुतबार तो ऐसे महापुरुषोंके अभावसे शास्त्रीय आचरणतक भी लुप्त हो जाता है।

मैं श्रील महाराजजीके अभय चरणकमलोंमें यही प्रार्थना करता हूँ कि वे नित्यधामसे ऐसी कृपा करें, जिससे हम अपनी श्रीरूपानुग–सारस्वत–गुरु–परम्पराके द्वारा दिखलाये गये मार्गसे कभी भी च्युत न हों।

श्रीमन्महाप्रभु द्वारा कथित–"**हरिदास आछिल पृथिवीर 'शिरोमणि'। ताहा बिना रत्न–शून्या हइल मेदिनी॥**अर्थात् श्रील हरिदास ठाकुर पृथ्वीके 'शिरोमणि'

थे। उनके बिना यह पृथ्वी 'रत्न'–शून्य हो गयी है।" (श्रीचैतन्यचरितामृत अन्त्य ११/९७)–वचनानुसार श्रील भक्तिवेदान्त नारायण महाराजके अप्रकट होनेसे यह पृथ्वी 'रत्न'–शून्य हो गयी है।

[श्रीपाद भक्तिप्रसाद विष्णु महाराज नित्यलीलाप्रविष्ट ॐ विष्णुपाद श्रीश्रीमद्भक्तिदयित माधव गोस्वामी महाराजजीके दीक्षित एवं ॐ विष्णुपाद श्रीश्रीमद्भक्तिकुमुद सन्त गोस्वामी महाराजजीके सन्यास शिष्य हैं। ये भारतमें सर्वत्र एवं विशेषतः हिमाचल प्रदेशमें श्रीमन्महाप्रभुकी वाणीका प्रचार–सेवा करते हैं]

वैष्णवोचित गुणोंसे विभूषित— श्रील महाराजजी

—श्रीपाद प्रियानन्द वन महाराज

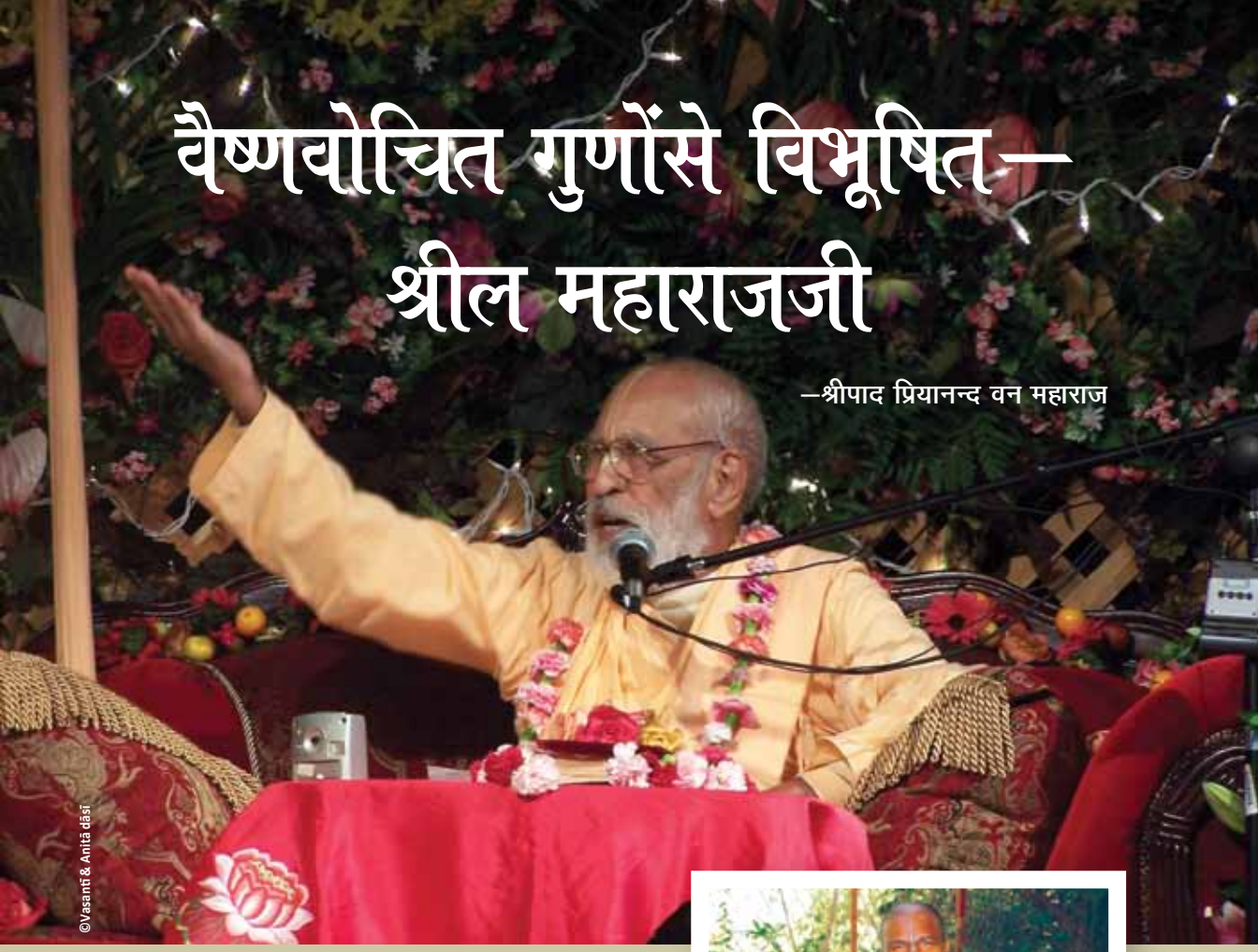

गङ्गाजलके द्वारा गङ्गापूजा

"**वैष्णवेर गुणगान करिले जीवेर त्राण** अर्थात् वैष्णवका गुणगान करनेसे जीवोंका त्राण होता है।"—प्रभुपादके महिमासूचक कीर्त्तन 'जय रे जय रे जय परमहंस महाशय' में कही गयी इस बातका रहस्य एकमात्र वैष्णव ही जानते हैं। मैं स्वयं अपने ज्येष्ठ गुरुभ्राता अर्थात् गुरुभ्राता सदृश श्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी महाराजजीका गुणगान करनेमें समर्थ नहीं हूँ। जिस प्रकार गङ्गाजलके द्वारा ही गङ्गापूजा होती है, मैं भी उसी प्रकार केवल श्रील महाराजजीके गुणोंके द्वारा ही श्रील महाराजजीका गुणगान करनेका प्रयास करुँगा। अप्राकृत चरित्रवाले श्रील महाराजजी सदैव आनन्दमय मुद्रामें रहते थे, उनका मुखकमल सदैव प्रसन्न रहता था। श्रील

महाराजजी कृष्णकथा कहनेमें परमदक्ष, अभिमान रहित, भजनमें प्रवीण तथा जड़ीय विषयोंके प्रति सम्पूर्ण रूपसे उदासीन थे। वे सदैव राधा–कृष्णकी दिव्य नित्यलीलाओंका मधुर वाणीसे कीर्त्तन करते थे। उनसे भेंट होनेपर वे प्रायः ही मुझसे पूछते थे कि मठमें सब कुशल तो है, किसीसे द्वेष तो नहीं होता, तो मैं श्रील महाराजजीसे कहता था कि आपकी अपार करुणासे किसीसे द्वेष नहीं होता।

श्रील प्रभुपादके विशुद्ध विचारोंकी व्याख्या करनेवाले

एकबार हमारे गुरुदेव विश्वविश्रुतवाग्मीप्रवर नित्यलीलाप्रविष्ट श्रीश्रीमद्भक्तिहृदय वन गोस्वामी महाराजने

अपने गुरुदेव जगद्गुरु श्रीश्रीमद्भक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी प्रभुपाद महाशयकी व्यासपूजाके अवसरपर श्रील नारायण गोस्वामी महाराजजीको आमन्त्रित किया था। उस समय अपने ज्येष्ठ गुरुभ्राता श्रील महाराजजीके मुखारविन्दसे श्रील प्रभुपादके आचार–विचार, निष्ठा तथा उनकी धाराके विशुद्ध विचारोंका सुस्पष्ट तथा सरल रूपमें व्याख्यान करनेवाली वीर्यवती हरिकथाको सुनकर मैं अभिभूत हो गया था।

वास्तविक परम–बान्धव

श्रील भक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी महाराजजीकी कथा श्रवण करके मैंने यह अनुभव किया कि वास्तवमें ऐसे वैष्णव ही हमारे परम–बान्धव हैं। श्रीहरि भी अपने ऐसे भक्तोंके मुखसे ही अपने अन्य शुद्ध भक्तोंका गुणगान श्रवण करते हैं। इसी शृखंलामें भगवानने स्वयं अपने मुखसे श्रीनारदजीसे कहा है–

नाहं वसामि वैकुण्ठे योगिनां हृदये न च।
मद्भक्ता यत्र गायन्ति तत्र तिष्ठामि नारद॥

(भक्तिसन्दर्भ २६९ में पद्मपुराणसे उद्धृत वचन)

अर्थात् हे नारद! मैं वैकुण्ठमें अथवा योगियोंके हृदयमें वास नहीं करता हूँ [अर्थात् आवश्यकतानुसार कभी–कभी वहाँ वास करता हूँ और कभी वहाँसे चला भी जाता हूँ], किन्तु जहाँ मेरे भक्त मेरे [परिकरोंसे सम्बन्धित मेरे] नाम–रूप–गुण–लीला–परिकर वैशिष्ट्यका गान करते हैं, वहाँ मैं निरन्तर विराजित रहता हूँ।

आमार भक्ते र पूजा–आमा हइते बड़।
वेदे–भागवते प्रभु इहा कैल दृढ़॥

(चै॰भा॰ आदि १/८)

मेरे भक्तोंकी पूजा मेरी पूजासे बढ़कर है–वेद और भागवतमें स्वयं भगवान्ने इस विचारको दृढ़ किया है।

भगवद्भक्तकी पूजा करनेसे भगवान् स्वतः ही प्रसन्न हो जाते हैं। जहाँ भगवान्का कोई भक्त उनके अन्य किसी श्रेष्ठ भक्तकी महिमाका गुणगान करता है, भगवान् सपरिकर स्वयं वहीं विराजते हैं।

करुणाकी वर्षा करनेवाले श्रील महाराजजी

श्रील भक्तिविनोद ठाकुरने कहा है–

शुद्ध भक्त चरण–रेणु भजन अनुकूल।
भकतसेवा परमसिद्धि प्रेमलतिकार मूल॥

(शरणागति)

अर्थात् शुद्धभक्तोंके चरणोंकी धूलि ही भजनके अनुकूल है तथा भक्तोंकी सेवाकी प्राप्ति ही परमसिद्धि स्वरूप तथा कृष्ण–प्रेमरूपी लताका मूल है।

वास्तविक विशुद्ध भक्त श्रीश्रील भक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी महाराजजीके स्मरण मात्रमें ही हमलोगोंका परम कल्याण है। श्रील महाराजजीके चरणकमलोंका चिन्तन करनेसे सुखकी सीमाका अन्त नहीं रहता, यही मेरा अनुभव है। श्रील महाराजजी चिन्तन करनेमात्रसे ही हृदयमें उदित होकर अपनी करुणाकी वर्षाकर हमारे जैसे जीवोंका परम कल्याण करते हैं।

जे आनिल प्रेम–धन करुणा प्रचुर।
हेन प्रभु कोथा गेला श्रीनारायण गोस्वामी ठाकुर॥

अहो! जो जगतके जीवोंपर प्रचुर करुणापूर्वक दुर्लभ प्रेमधनको लेकर आए, वे श्रीभक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी महाराज कहाँ चले गए?

[श्रीपाद प्रियानन्द वन महाराज नित्यलीला प्रविष्ट ॐ विष्णुपाद श्रीश्रीमद्भक्तिहृदय वन गोस्वामी महाराजजीके आश्रित तथा श्रीव्रज सारस्वत गौड़ीय वैष्णव संघके एक प्रमुख सदस्य हैं। वर्त्तमान समयमें ये कालियदह स्थित भजनकुटीमें ही वास करते हैं।]

श्रीरूप गोस्वामीकी धारामें पूर्णता अभिषिक्त–

वैष्णवेर गुणगान करिले जीवेर त्राण।
शुनियाछि साधु–गुरु मुखे॥

('जय रे जय रे जय परमहंस महाशय' कीर्त्तनका एक पद)

अर्थात् वैष्णवोंका गुणगान करनेसे जीवोंका परित्राण होता है, ऐसा साधु–गुरुके मुखसे सुना है।

मैं रूपानुगधारामें स्नात मेरे शिक्षागुरुदेव श्रीरूप–प्रियात्मा श्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी महाराजजीकी स्मृतिमें श्रीश्रीभागवत–पत्रिकाके कार्यालय, मथुरासे विरह–विशेषाङ्कके प्रकाशनके विषयमें सुनकर एवं उन विशेषाङ्कोंको देखकर बहुत आनन्दित हुआ। श्रील महाराजजीके अनुकम्पित कुछेक भक्तोंने मुझसे भी श्रील महाराजजीके चरणकमलोंमें पुष्पाञ्जली प्रदान करने हेतु अनुरोध किया। उन्हींके अनुरोधसे ही मैं इस कार्यमें प्रवृत्त हुआ हूँ। यद्यपि श्रील महाराजजीके अनन्त गुण हैं, तथापि मैं उनमेंसे दो–चार रत्नोंका वर्णन करके धन्यातिधन्य होऊँगा।

सिंह–शिशु

प्रायः चार–पाँच वर्ष पूर्व मुझे अपने परमगुरुदेव श्रीगौड़ीय–सङ्घके प्रतिष्ठाता नित्यलीलाप्रविष्ट ॐ विष्णुपाद श्रीश्रीमद्भक्तिसारङ्ग गोस्वामी महाराजके प्रिय विश्रम्भ–सेवक श्रीवनविहारी बाबाजी महाराजकी कृपासे लगभग चालीस वर्षके बाद श्रीनवद्वीप–धाम–परिक्रमाका सौभाग्य प्राप्त हुआ। हमने कोलेरडाङ्गामें नव स्थापित श्रीश्रीकेशवजी गौड़ीय मठसे आयोजित नवद्वीप

परमपूज्य महाराजजी

—श्रीपाद भक्तिबान्धव हृषिकेश महाराज

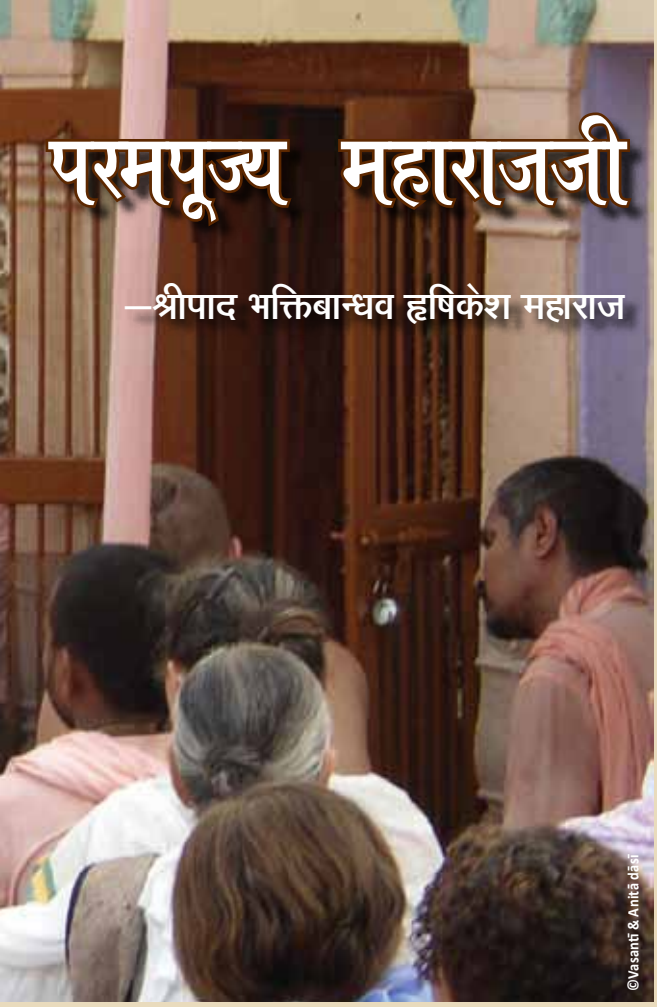

परिक्रमामें योगदान दिया। उन दिनों सन्ध्याके समय पूज्यपाद महाराजजीके गम्भीर भावों तथा उनकी शास्त्रीय–सिद्धान्तोंसे परिपूर्ण निर्भीक हरिकथाको सुनकर मैंने उन्हें केशरीवीर्य अष्टोत्तरशत श्रीश्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराजजीके अपने परम गुरुदेव श्रील भक्तिसारङ्ग गोस्वामी महाराज द्वारा 'पाषाण्ड गजैक सिंह' की उपाधिसे विभूषित श्रील भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराजके 'सिंह–शिशु'के रूपमें अनुभव किया।

यथार्थ आचार्य

श्रील भक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी महाराजजीने मथुरामें स्थित श्रीकेशवजी गौड़ीय मठमें प्रायः आजीवन अवस्थानकर श्रीमन्महाप्रभुके द्वारा आचरित एवं प्रचारित शुद्ध प्रेम–भक्तिके आचार–प्रचार, शुद्ध भगवत्–भक्तिसे सम्बन्धित ग्रन्थों तथा प्रतिवाद–ग्रन्थ–स्वरूप 'प्रबन्ध–पञ्चकम्' आदिका प्रकाशन करके यथार्थ आचार्यत्वके आदर्शको स्थापित किया है।

निकुञ्जसेवामें सेवाधिकार प्रदानकारी

श्रील महाराजजीने श्रीब्रह्म–मध्व–गौड़ीय–सम्प्रदायके अन्तर्गत श्रीरूपानुग–विचारधाराका प्रचार आदि करनेके उद्देश्यसे पृथ्वीके विभिन्न स्थानोंपर प्रचारकेन्द्र और मठ आदि स्थापित किये हैं। श्रील महाराजजीने श्रीधाम वृन्दावन स्थित सेवाकुञ्जमें श्रीरूप–सनातन गौड़ीय मठकी स्थापनसे आश्रितजनोंको 'निकुञ्जसेवा' में सेवाधिकार प्रदान किया है।

यथार्थ गुरु–भ्राता

अस्मदीय श्रीगुरुपादपद्म अष्टोत्तरशत श्रीश्रीमद्भक्तिसुहृद् अकिञ्चन गोस्वामी महाराजजीके आदेशसे मैं 'सिद्धपीठ इमलीतला' के पुनर्संस्करणके

उद्देश्यसे अपने गुरुभ्राता श्रीमान् तमालकृष्ण ब्रह्मचारीके साथ मथुरामें श्रील महाराजजीके निकट परामर्श करने तथा सेवा हेतु सहायताकी बात करनेके लिये गया था। हमारे परिचयको सुननेके साथ ही श्रील महाराजजीने तत्क्षणात् हमें अस्मदीय परमगुरु श्रीश्रीमद्भक्तिसारङ्ग

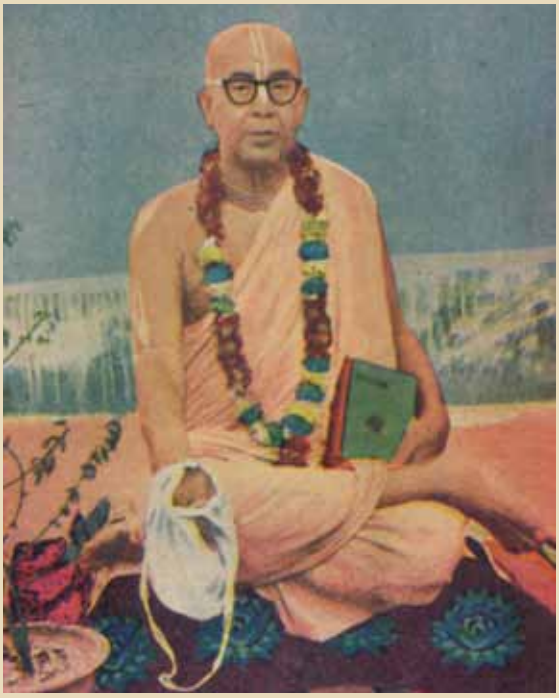

गोस्वामी महाराज और अपने गुरुपादपद्म श्रील भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराज—इन दोनों गुरुभ्राताओंके परस्पर स्नेहके सम्बन्धमें बतलाना प्रारम्भ कर दिया। बादमें उन्होंने अपने आश्रित अनेक मथुरा–वासियोंके द्वारा तत्क्षणात् सुसमाधानकी व्यवस्थाकर यथार्थ 'गुरु–भ्राता' का आदर्श स्थापित किया।

सेवा–सहायता हेतु सदैव प्रस्तुत

लगभग बारह वर्ष पूर्व मुझे श्रीनन्दग्राममें स्थित टेरकदम्बमें श्रीश्रील रूप गोस्वामीकी भजन स्थलीके कदम्ब–काननमें सेवाका अधिकार प्राप्त हुआ। उसके कुछ समयके बाद ही श्रीव्रजमण्डल परिक्रमा वर्ष २००१में श्रीगोपाष्टमीके दिन श्रील महाराजजीका 'टेरकदम्ब'में शुभागमन हुआ। श्रील महाराजजीने श्रील रूप गोस्वामी तथा श्रील सनातन गोस्वामीके व्रजवासकी महिमाका कीर्त्तन, गोचारण लीला एवं श्रील रूप गोस्वामीकी इच्छाको पूर्ण करने हेतु श्रीमती राधाजीके द्वारा बनायी गयी खीरकी कथाका प्रेमोल्लास–पूर्वक वर्णन किया। वे प्रतिवर्ष ही यहाँ उपस्थित होकर भावावेशमें श्रीरूप गोस्वामीकी महिमाका कीर्तन करते थे। मुझ दीन–दासकी 'टेर–कदम्ब' स्थलीकी सेवा–प्राप्त करनेके विषयमें सुनते ही उन्होंने अत्यधिक प्रसन्नचित होते हुए अपना मन्तव्य प्रदान करते हुए कहा—''इतने दिनोंके बाद श्रीरूप गोस्वामीके इस स्थानकी सेवा हम सारस्वत–गौड़ीय–वैष्णवोंको प्राप्त हुयी

है। यह सेवा हम गौड़ीय वैष्णवोंकी ही है, इस सेवाको करके तुम यथार्थ गुरुसेवा कर रहे हो। निर्भय होकर सेवा करो, कभी किसी भी प्रकारकी असुविधा होनेपर निसंकोच होकर मुझे बतलाना।" यह बात उन्होंने परमपूज्य भक्तिचकोर श्रौति महाराजजीसे भी कही।

श्रील महाराजजी प्रायः प्रत्येक वर्ष ही 'टेरकदम्ब' आते थे एवं मैं उन्हें नित्यप्रति निवेदित होनेवाला 'खीर प्रसाद' देता था। यदि श्रील महाराजजीका कोई सेवक उनके स्वास्थ्य हेतु उन्हें खीर ग्रहण करनेसे मना करता, तब वे प्रेमपूर्वक कहते कि "यह श्रीमती राधारानीके द्वारा प्रस्तुत की गयी खीर है, यह श्रीरूप गोस्वामीका महाप्रसाद है, इससे कोई भी हानि नहीं होगी।" श्रीटेरकदम्ब नामक लीलास्थलीके जीर्णोद्धार हेतु श्रील महाराजजीके द्वारा की गयी विविध प्रकारकी सेवाएँ आज भी उनकी स्मृतिको जागृत करती हैं। व्रजमण्डलकी विभिन्न लीला–स्थलियोंके अन्तर्गत 'टेरकदम्ब' श्रील महाराजजीका एक प्रिय स्थान रहा—उनकी हरिकथा एवं श्रीरूपानुगत्यसे ऐसा प्रतीत होता है। श्रील महाराजजीने स्वयं यहाँ पर एक कदम्ब वृक्ष रोपण किया है, जो हमारे लिए उनकी स्मृतिको सर्वदा जाग्रत रखता है।

व्रजनिष्ठ– व्रजसेवकोंके अतिमर्त्त्य सेवा–विग्रह स्वरूप

उद्धव–क्यारी, भाण्डीरवट, दुर्वासा–टीला आदि श्रीमन्महाप्रभुके व्रजनिष्ठ–व्रजसेवकोंके अतिमर्त्त्य सेवा–विग्रह स्वरूप श्रील भक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी महाराजके द्वारा लीला–स्थलियोंके विकास हेतुकी गयी सेवाका आजतक भी स्मरण कराती हैं। इसीलिए ही ऊँचागाँववासी श्रीनारायण भट्ट परिवारने उन्हें 'युगाचार्य' पदवीसे सम्भूषितकर श्रीगौड़ीय–वैष्णवोंकी महिमाको प्रकाशित किया है।

[श्रीभक्तिबान्धव हृषिकेश महाराज नित्यलीलाप्रविष्ट ॐ विष्णुपाद श्रीश्रीमद्भक्तिसारङ्ग गोस्वामी महाराजजीके आश्रित नित्यलीला प्रविष्ट श्रीश्रीमद्भक्तिसुहृद अकिञ्चन गोस्वामी महाराजके चरणाश्रित तथा नन्दग्रामस्थित श्रील रूप गोस्वामीकी भजन–कुटीर 'टेरकदम्ब' में रहते हैं।]

“जिनकर सुयश कहल ना जाय”[१]

—श्रीपाद राधामाधव दास

करबद्ध निवेदन

प्रातःस्मरणीय पूज्यपाद त्रिदण्डिस्वामी भक्तिवेदान्त नारायण महाराजके साथ इस दासका कम–से–कम तीस वर्षोंका अन्तरङ्ग सम्बन्ध, सामीप्य, पारमार्थिक विचार–विमर्शका भाव रहा है। इस भावनात्मक सम्बन्धको लेखनके स्तरपर बाहर निकाल करके उसका परिवेशन करना बड़ा ही दुष्कर कार्य है। श्रील नारायण महाराजजीके प्रति शब्दोंकी भाषामें बन्धा हुआ मेरा यह संस्मरण

१ जिनके सुयशका वर्णन नहीं किया जा सकता

पूर्णतः व्यक्तिगत एवं अनछुएँ पहलुओंपर आधारित हैं, अतः पाठकोंसे करबद्ध निवेदन है कि वे इसी विचारसे इसके समग्र रूपपर ध्यान दें, तभी वे मेरे द्वारा श्रील महाराजजीके साथ व्यतीत किये गये दुर्लभ क्षणोंका आलोकमय रसास्वादन प्राप्त कर पायेंगे।

श्रील महाराजजीके साथ मेरा सम्बन्ध

जब कभी किसी भी कामसे मथुरा जाना होता था, तब मैं श्रीकेशवजी गौड़ीय मठमें जाकर श्रील महाराजजीके दर्शन प्राप्त करनेका लोभ नहीं छोड़ पाता था। मैं श्रील महाराजजीके साथ बहुत खुलकर बात करता था। मर्यादाकी सीमामें बहुतसी व्यक्तिगत बातें, विशेषकरके व्रजमण्डलके सम्बन्धमें अनेकानेक हास्य–विनोद परक चर्चाएँ होती थी और उसमें हँसीके ठाहके की गूँजसे हमलोग अत्यधिक प्रफुल्लित हो उठते थे।

नित्यलीलामें प्रविष्ट होनेसे लगभग दो वर्ष पूर्व श्रीरूप–सनातन गौड़ीय मठमें श्रील रूप गोस्वामीके तिरोभाव–महोत्सवके अवसरपर आयोजित विद्वत्–गोष्ठीमें श्रील महाराजजीने श्रोताओंको मेरा परिचय अपने बाल–सखाके रूपमें प्रदान करके न केवल मुझे अत्यधिक गर्वान्वित किया, बल्कि उसी वाणीके माध्यमसे उन्होंने उसमें अन्तर्निहित अपने प्रेमाभिलाष रूपी गोपनीय आशीर्वादसे मुझे कृतार्थ भी किया। दुर्लभ, अगम्य, अमोघ महत्सङ्गके स्वरूप और सामर्थ्यका मैंने श्रील महाराजजीमें दर्शन किया है। श्रील महाराजजीके व्यक्तिगत वार्त्तालापमें जितनी सरलता, सहजता एवं स्पष्टता थी, गम्भीर–विषयकी चर्चामें उनकी वाणी विषयके अनुरूप उतनी ही गम्भीर, प्राञ्जल, दुरूह एवं अध्यानस्थ तथा अयोग्य व्यक्तिकी समझसे बाहर हो जाती थी। लगता नहीं था कि जो व्यक्ति इतने हिल–मिल करके सामान्य बात करते हैं, वह ऐसे प्रसङ्गके आनेपर समुद्रकी गहरायी एवं आकाशकी ऊँचाईमें श्रोताओंको ऐसे निमग्न कराते एवं उड़ान भराते थे कि दर्शनशास्त्रके विद्यार्थी होनेपर भी मेरे जैसे व्यक्तिके लिये सब प्रकारके चिन्तनको छोड़करके हाथ जोड़नेके अतिरिक्त और अन्य कोई मार्ग दिखलायी नहीं पड़ता था।

श्रील महाराजजीके समर्पण एवं आविष्टताका दिग्दर्शन

श्रील भक्तिवेदान्त नारायण महाराज तथा मैं–हम दोनोंकी ही मातृभाषा भोजपुरी थी। भोजपुरी भाषी होनेके कारण मैं उनसे जान–बूझकरके हठपूर्वक भोजपुरीमें ही वार्त्तालाप करता था, किन्तु उनसे उत्तर खड़ीबोली (हिन्दी) में ही प्राप्त होता था। उसका कारण यह नहीं कि वे अपनी क्षेत्रीय मातृभाषाको भूल गये थे, बल्कि किशोर–अवस्थासे ही बङ्गदेशमें अपने गुरुदेव, वैष्णवजन तथा श्रीमन् महाप्रभुके परिकरों द्वारा बङ्गभाषामें लिखित ग्रन्थोंके प्रति इतना अधिक निमग्न, समर्पित तथा आविष्ट हो चुके थे कि भोजपुरी भाषाके बोलनेमें उन्हें किसी भी प्रकारके आनन्दकी प्राप्ति नहीं होती थी। यह सत्य है कि अपनी भाषा अपने लोगोंके साथ बोलनेमें आनन्दका अनुभव करना मेरी निजी दुर्बलता थी। यह बात मैं आध्यात्मिक सन्दर्भमें नम्रतापूर्वक स्वीकार करता हूँ।

पारमार्थिक संरक्षक

बहुत प्राचीन बात है कि श्रीकेशवजी गौड़ीय मठमें मिथिला निवासी श्रीमान् प्रेमदास नामक ब्रह्मचारी रहते थे। वे व्यवस्था विभागमें निपुण तथा वैष्णवोचित आचार–विचारसे युक्त थे। मुझसे जान–पहचान होनेके कारण उनके पूर्वाश्रमके लोग उन्हें ढूँढ़ते हुए पानीघाट स्थित राधागोविन्द कुटीमें मेरे पास पहुँचे। उनकी बहनको रोते हुए देखकर मेरा हृदय द्रवित हो गया तथा मैंने मथुरा जाकर श्रील महाराजजीसे श्रीमान् प्रेमदासको थोड़ी देरके लिये अपने साथ ले जाकर उसके परिवारके सदस्योंसे मिलाकर लाने हेतु आज्ञा प्राप्तिकी याचना की। अनिच्छा होनेपर भी श्रील महाराजजीने मेरे अत्यधिक अनुरोधवशतः उन्हें मेरे साथ भेजनेकी अनुमति तो दे दी, किन्तु साथ ही श्रीमान् प्रेमदासकी पारमार्थिक सुरक्षाके लिये श्रीमान्

शुभानन्द ब्रह्मचारी (श्रीमान् भक्तिवेदान्त तीर्थ महाराज) को भी साथमें भेजा तथा यह भी निर्देश दिया कि रात्रिके समय राधागोविन्द कुटीमें नहीं ठहरकर श्रीरूप–सनातन गौड़ीय मठमें ही ठहरना। श्रील महाराजजीकी आज्ञाका सम्पूर्णरूपसे पालन किया गया। इस घटनाके कुछ दिन बाद बिना किसी आहटके ही श्रीमान् प्रेमदास ब्रह्मचारी पुनः संसारमें लौट गये। इस घटनाके होनेके बाद ही मुझे यह बात ठीकसे समझ आयी कि श्रील महाराजजी उन्हें उनके परिवारीजनोंसे अकेले मेरे साथ जाकर मिलनेके लिये सहमत क्यों नहीं हो रहे थे। यद्यपि इस घटनासे श्रील महाराजजीको अत्यन्त हार्दिक क्लेश एवं वेदना हुई, किन्तु उन्होंने इसे कभी भी अपने मुखसे व्यक्त नहीं किया। इस घटनासे मुझे बहुत आत्मग्लानि हुई तथा प्रत्यक्षतः इसमें मेरा कोई कर्तृत्व नहीं होनेपर भी मैं आज तक आत्म–अपराधके बोधसे स्वयंको मुक्त नहीं कर पाया हूँ। मैं लगभग दो वर्ष तक इस विस्फोटक घटनाके कारण श्रील महाराजजीके सम्मुखस्थ होने (सामने आने) का साहस नहीं जुटा पाया था, किन्तु बादमें मेरा आना–जाना पूर्ववत् प्रारम्भ हो गया।

व्रजके विरही लोग बेचारे

श्रील भक्तिवेदान्त नारायण महाराजजी कुछ समय तक अस्वस्थलीला करनेके उपरान्त हम लोगोंको 'व्रजके विरही लोग बेचारे' वाली अवस्थामें डालकर अन्तर्धान हो गये। हम सभी दैव द्वारा विरहकी अवस्थामें धकेले गये हैं और उसीमें रहनेके लिये विवश हैं। मेरा श्रील महाराजजीके साथ जो सम्पर्क था, उसे स्मरण करके आज भी मन भारी हो जाता है, हृदय भर आता है और प्रतीत होता है कि मैं किसी विरह–समुद्रमें गोते लगा रहा हूँ, किन्तु मुझे तट नहीं मिल रहा है।

मञ्जरी–रूपसे अधिक महान् आचार्य–रूप

महापुरुष भगवान्के मिशनको पूर्ण करनेके लिये उन्हींकी शुभेच्छासे इस जगतमें आते हैं और फिर उन्हींके निर्देशसे लीला–सम्वरणकर श्रीराधागोविन्दकी निभृत सेवामें अपने मञ्जरी रूपमें अवस्थित हो जाते हैं। किन्तु मञ्जरी रूपसे आचार्य रूप अधिक महान् होता है, क्योंकि मञ्जरी रूप तक तो हमारी पहुँच नहीं होती, परन्तु आचार्य रूपसे हम अपनी पात्रताके अनुसार उनकी कृपा एवं मार्गदर्शन प्राप्त कर सकते हैं।

अपनी विवशताका ज्ञापन

इसमें कोई दो राय नहीं कि ऐसे सन्त अन्तर्धानकी स्थूल लीला करते हैं, वस्तुतः आचार्य रूपसे वे अपने प्रेमी भक्तोंके लिये सदा–सर्वदा सुलभ हैं। श्रील महाराजजीकी कृपा–दृष्टिसे हम सभी कच्छपके अंडेकी भाँति[१] पालित पोषित होंवे, इसी आशीर्वादकी कामना है।

कवि दिनकरकी पंक्तियोंको कतिपय संशोधनके साथ उधार ले करके मैं अपनी विवशता निम्नरूपमें प्रकट कर रहा हूँ–

हाथ गिरवा (अर्थात् गर्दन) तक जा नहीं सकते,
उगलियाँ न छूँ सकती ललाट।
मुझ वामनकी पूजा किस प्रकार
तुझ तक पहुँचे सन्त विराट॥

[श्रीपाद राधामाधव दास जी श्रीगौड़ीय वैष्णव–सम्प्रदायके (बेनीपट्टी, मिथिला निवासी) श्रीरासबिहारी दास बाबाजी महाराजके चरणाश्रित हैं तथा वृन्दावन परिक्रमा मार्ग पानीघाटमें स्थित श्रीराधागोविन्द कुटीमें रहते हैं।]

१ मादा कछुँआ अपने अण्डेको किसी स्थानपर छिपाकर जलके भीतर प्रवेश कर जाती है तथा उसके द्वारा वहींसे अण्डेकी चिन्ता करने मात्रसे ही अण्डा वृद्धि प्राप्त करते-करते परिपक्व होनेपर फूट जाता है तथा उसमेंसे सन्तान जन्म ग्रहण करती है। उसी प्रकार श्रील महाराजजीने भी हमें भक्तिलताका बीज प्रदान किया है, हमारी कामना है कि वे अपने नित्यधामसे अपनी कृपा-दृष्टि द्वारा इसका पालन-पोषण करें]

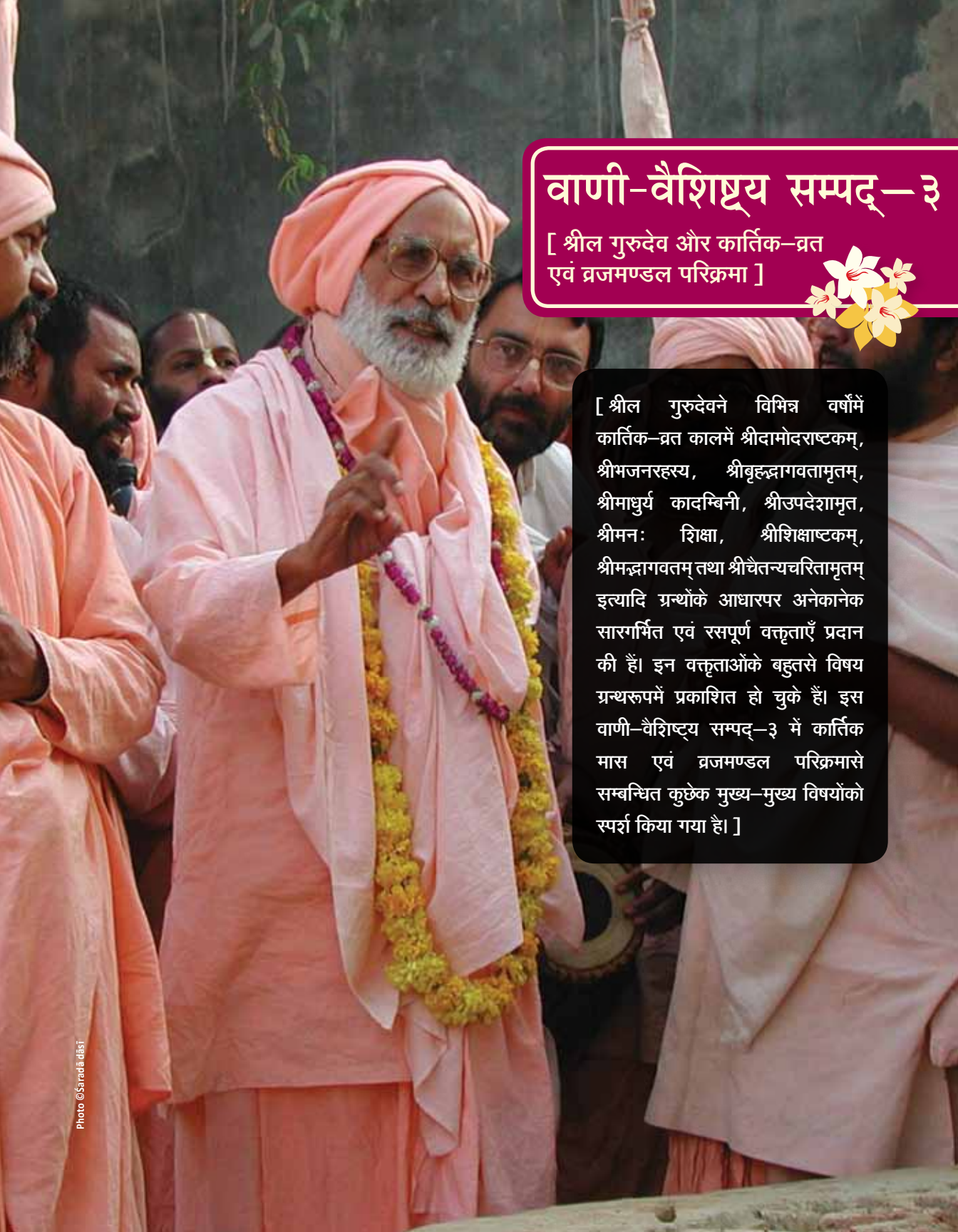

वाणी–वैशिष्ट्य सम्पद्–३

[श्रील गुरुदेव और कार्तिक–व्रत एवं व्रजमण्डल परिक्रमा]

[श्रील गुरुदेवने विभिन्न वर्षोंमें कार्तिक–व्रत कालमें श्रीदामोदराष्टकम्, श्रीभजनरहस्य, श्रीबृहद्भागवतामृतम्, श्रीमाधुर्य कादम्बिनी, श्रीउपदेशामृत, श्रीमनः शिक्षा, श्रीशिक्षाष्टकम्, श्रीमद्भागवतम् तथा श्रीचैतन्यचरितामृतम् इत्यादि ग्रन्थोंके आधारपर अनेकानेक सारगर्भित एवं रसपूर्ण वक्तृताएँ प्रदान की हैं। इन वक्तृताओंके बहुतसे विषय ग्रन्थरूपमें प्रकाशित हो चुके हैं। इस वाणी–वैशिष्ट्य सम्पद्–३ में कार्तिक मास एवं व्रजमण्डल परिक्रमासे सम्बन्धित कुछेक मुख्य–मुख्य विषयोंको स्पर्श किया गया है।]

Photo ©Śaradā dāsī

चातुर्मास्य–व्रतको पालन करना ही कर्त्तव्य

श्रावण, भाद्र, आश्विन और कार्तिक—इन चार मासोंको एक साथ चातुर्मास्य कहा जाता है। प्राचीन कालसे ही ऋषि–मुनि, भक्त इत्यादि प्रायः सभी चातुर्मास्यके समयमें एक ही स्थानपर रहकर भगवान्‌का भजन–कीर्त्तन करते हैं। श्रीमद्भागवतमें श्रीनारदजीने अपने पूर्वजन्मके प्रसङ्गमें ऋषियोंके द्वारा उनके ग्राममें रहकर चातुर्मास्य व्रतके पालनके विषयमें बताया है। श्रीचैतन्यचरितामृतमें श्रील कृष्णदास कविराज गोस्वामीने श्रीचैतन्य महाप्रभुके द्वारा श्रीरङ्गमें श्रीगोपाल भट्ट गोस्वामीके पिता श्रीवेङ्कट भट्टके घरपर रहकर आदरपूर्वक चातुर्मास्य–व्रतके पालनका आदर्श प्रस्तुत करनेका वर्णन किया है। श्रील सनातन गोस्वामीने स्वरचित श्रीहरिभक्तिविलासमें चातुर्मास्य–व्रतके पालनकी महिमाका विस्तृत रूपसे वर्णन किया है। सप्तम गोस्वामी श्रील भक्तिविनोद ठाकुरने चातुर्मास्य–व्रतकी महिमासे सम्बन्धित कुछेक प्रबन्ध भी लिखे हैं। मेरे परमाराध्य गुरुपादपद्म नित्यलीला प्रविष्ट ॐ विष्णुपाद श्रीश्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराज चातुर्मास्यके आरम्भ होनेसे पूर्व ही अपने गुरुदेव श्रील प्रभुपादके चातुर्मास्यके चित्रपटको अर्थात् श्रील प्रभुपादके ऐसे चित्रपटको, जिसमें चातुर्मास्यके समय की उनकी बढ़ी हुई दाढी तथा केश होते थे, उसे मन्दिरमें रखनेका आदेश देते थे, जिससे कि हम सभी श्रील प्रभुपादके आदेशसे अनुप्राणित होकर उत्साह एवं दृढतापूर्वक चातुर्मास्य–व्रतका पालन करनेके लिये प्रस्तुत हो जायें।

अनेक व्यक्ति चातुर्मास्यके अन्तर्गत केवलमात्र कार्तिक–व्रतका ही पालन करते हैं, चातुर्मास्य–व्रतका पालन नहीं करते। इस विषयमें मेरे गुरुपादपद्म कहते थे कि यद्यपि चौंसठ प्रकारके भक्त्यांगोंमें चातुर्मास्यका वर्णन नहीं किया गया है, केवल ऊर्जा–व्रतका ही वर्णन मिलता है, तथापि हमें चातुर्मास्यके चारों मासोंमें ही व्रतका पालन करना चाहिए। जो चातुर्मास्य व्रतका पालन नहीं करते हैं, वे श्रीमन्महाप्रभुके अनुयायी नहीं कहे जा सकते, क्योंकि श्रीमन् महाप्रभुने अपने जीवनमें स्वयं इस चातुर्मास्य–व्रतका पालन किया था। इसलिए मैंने पूर्व–पूर्व ऋषि–मुनियों, स्वयं भगवान् श्रीचैतन्य महाप्रभु एवं रूपानुगप्रवर श्रील भक्तिविनोद ठाकुर, श्रील प्रभुपाद, अपने गुरु महाराज एवं उनके गुरुभाईयों—सभीके द्वारा दिखलाये गये आदर्शका सदैव सम्मान एवं पालन करते हुए इन महाजनों द्वारा प्रदर्शित विधि–निषेध इत्यादिके आधारपर ही यथासम्भव चातुर्मास्य–व्रतका पालन किया है। इसीलिए देश–विदेशमें

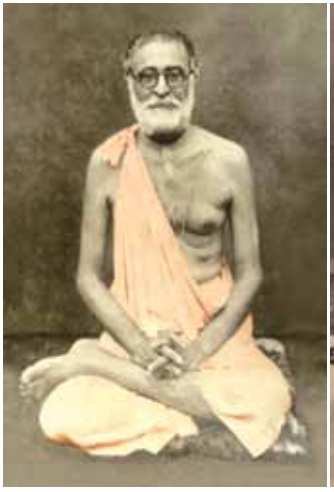

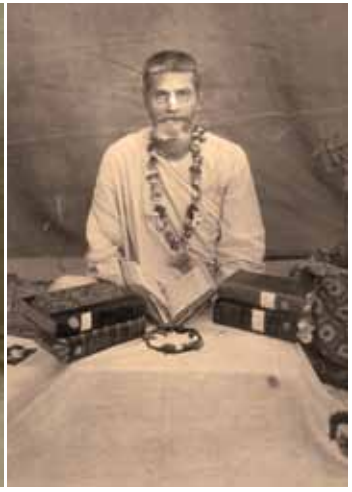

जो चातुर्मास्य व्रतका पालन नहीं करते हैं, वे श्रीमन्महाप्रभुके अनुयायी नहीं कहे जा सकते, क्योंकि श्रीमन् महाप्रभुने अपने जीवनमें स्वयं इस चातुर्मास्य–व्रतका पालन किया था।

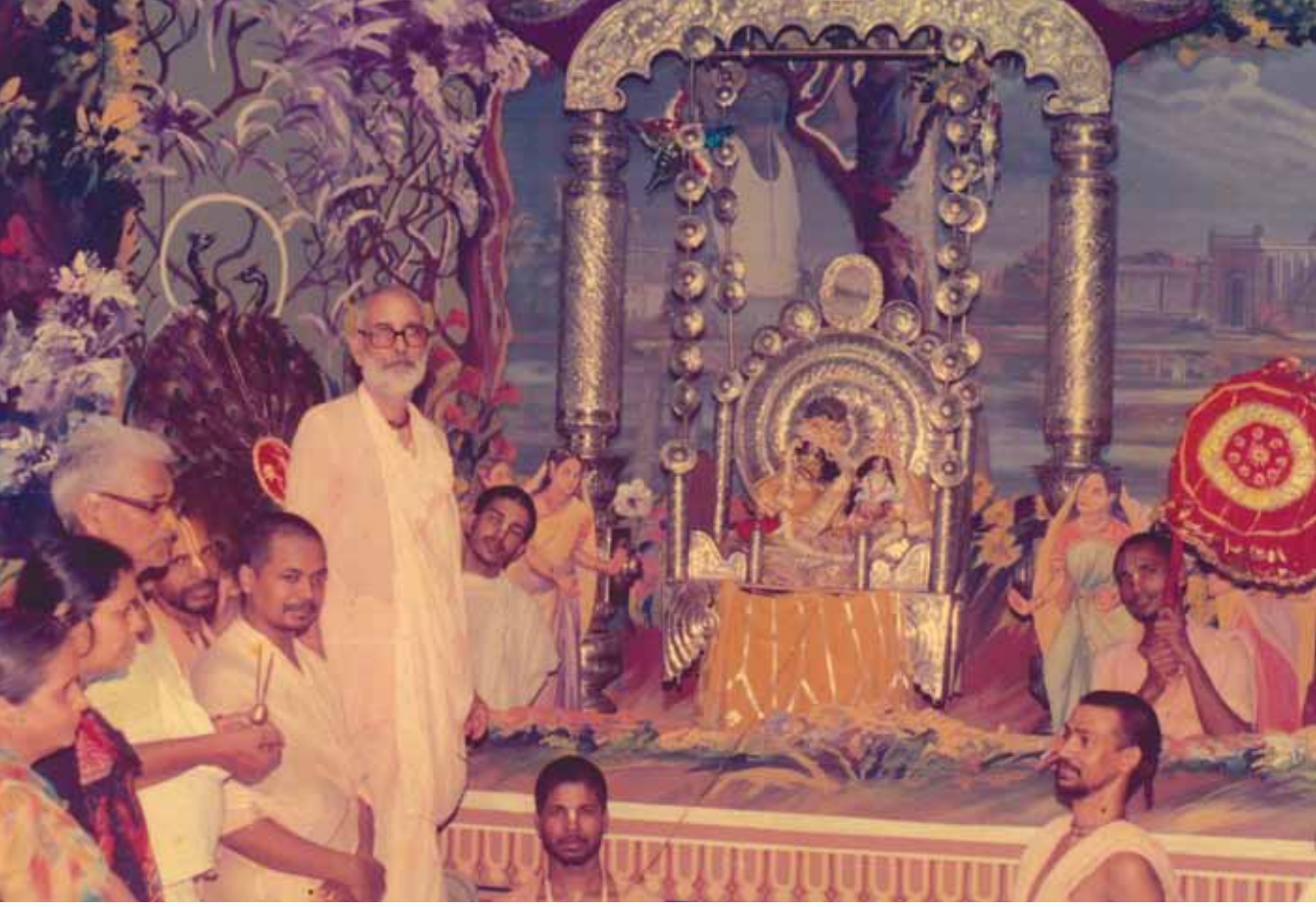

प्रचार कार्य हेतु अत्यधिक व्यस्त रहनेपर भी मैं चातुर्मास्यके आरम्भ होनेसे पहले ही भारतमें आ जाता हूँ तथा चातुर्मास्य–व्रतके पालनके बाद ही पुनः प्रचार–सेवाके लिए विदेश जाता हूँ। यद्यपि मेरी इच्छा रहने पर भी व्रजमें एक ही स्थान पर रहकर चातुर्मास्य–व्रतका पालन करना मेरे लिये सम्भव नहीं हो पाता, तब भी चातुर्मास्यके अन्तर्गत आनेवाले गुरु–पूर्णिमा, झूलन, जन्माष्टमी, राधाष्टमी तथा कार्तिक इत्यादि विशेष–विशेष व्रत–उत्सवोंको तो अवश्य ही व्रजमें ही रहकर पालन करता रहा हूँ। जो व्यक्ति श्रीचैतन्य महाप्रभु एवं पूर्व–पूर्व आचार्योंके सिद्धान्तोंका अनुगमन नहीं करते, उनके भजन–पथमें अनेक प्रकारकी बाधाएँ उत्पन्न होती हैं। अतएव चातुर्मास्य–व्रत प्रत्येक वैष्णवके लिये पालनीय है। सभीको विशेषतः ब्रह्मचारी, संन्यासियोंको तो चातुर्मास्य–व्रतका दृढतापूर्वक पालन करना चाहिए।

कार्तिक–चातुर्मास्यका अन्तिम मास

यदि कोई किसी कारणवशतः चातुर्मास्यके चारों मासोंमें व्रतका पालन नहीं कर पाता, तो अन्ततः उसे चातुर्मास्यके अन्तिम मास—कार्तिक मास (नियमसेवा मास) का पालन तो अवश्य ही करना चाहिए। विशेषतः हम गौड़ीय वैष्णवोंके लिए जो महाभाव स्वरूपा श्रीमती राधारानीकी कृपा प्राप्त करनेके अभिलाषी हैं, कार्तिक या ऊर्जा मासका नियमपूर्वक पालन एक अनिवार्य विधि है। क्योंकि, इस कार्तिक मासमें ऊर्जा व्रतका पालन करनेसे श्रीमती राधारानीकी विशेष कृपा प्राप्त होती है।

कार्तिक–मासके विभिन्न नामोंका तात्पर्य

सात्वत शास्त्रोंमें चातुर्मास्यके चतुर्थ अर्थात् अन्तिम मासका कार्तिक, ऊर्जा, नियम सेवा तथा दामोदर मास इत्यादि अनेक नामोंसे परिचय पाया जाता है।

इस मासकी अधिष्ठात्री देवी कीर्तिदा–कुमारी 'कार्तिकदेवता' (अर्थात् कार्तिक मासकी अधीश्वरी) श्रीमती राधारानी है।

श्रीकृष्ण शक्तिमान हैं और श्रीराधाजी उनकी शक्ति या ऊर्जा हैं। श्रीकृष्ण जो भी इच्छा करते हैं, श्रीकृष्णके भीतर स्थित उनकी स्वरूप या अन्तरङ्गा शक्ति श्रीमती राधिकाजी उनकी उन समस्त इच्छाओंको पूर्ण करती हैं। श्रीकृष्णने श्रीगिरिराज गोवर्धनको सात दिन और सात रात तक धारण किया था, वास्तवमें श्रीमती राधिकाने ही श्रीगिरिराजजीको धारण किया था। कृष्ण तो केवल अभिलाषा मात्र कर सकते हैं, किन्तु शक्ति श्रीमती राधिकाजीसे आती है। इसीलिए श्रीमती राधिका ऊर्जेश्वरी अथवा ऊर्जा (शक्ति) की ईश्वरीके नामसे जानी जाती हैं। वे श्रीकृष्णकी ह्लादिनी, अन्तरङ्गा एवं स्वरूप शक्तियोंकी मूल हैं। श्रीकृष्णकी असंख्य शक्तियाँ हैं एवं श्रीराधिका इन समस्त शक्तियोंकी स्रोत एवं पराकाष्ठा हैं। यहाँ तक कि वे योगमाया, चन्द्रावली एवं आठ प्रमुख सखियोंकी भी मूल हैं। वे श्रीकृष्ण–स्वरूपिणी हैं तथा वास्तवमें उनसे अभिन्न हैं।

श्रीमद्भागवतके प्रथम श्लोकमें हमें "तेजो वारिमृदाम्" पाठ मिलता है। इस श्लोककी टीकामें हमारे गुरुवर्ग लिखते हैं कि 'तेजः' का अभिप्राय श्रीकृष्णके तेज अथवा शक्तिसे है। श्रीकृष्णकी शक्तिकी कृपाके बिना हम कृष्ण–भजन नहीं कर सकते। हमारा गायत्री मंत्र भी इसी शक्तिके प्रति प्रार्थना है–'सवितुः वरेण्यं' अर्थात् ऊर्जा शक्ति ही सूर्य अर्थात् कृष्णरूपी सूर्यके तेजका आधार है। श्रीकृष्णके इस तेजका स्रोत श्रीमती राधाजी ही हैं। उनकी शक्ति श्रीराधाजी 'वरेण्यं' हैं अर्थात् ताप और तेज प्रदान करनेवाले कृष्णरूपी सूर्यके लिये भी वे पूजनीय हैं। 'भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात्' अर्थात् हम श्रीमती राधिकाजीका ध्यान करते हैं और प्रार्थना करते हैं कि वे मूर्तिमान स्वरूप शक्ति हमारे हृदयमें पूर्ण रूपसे प्रकट हों। जब तक हम श्रीमती राधिकाका अनुग्रह प्राप्त नहीं करते, हम भक्ति–राज्यमें पूर्णतः प्रतिष्ठित नहीं हो सकते। हमारा गौड़ीय–सम्प्रदाय श्रील रूप

गोस्वामीका अनुगमन करता है तथा हमारे सभी आचार्य श्रीराधापक्षीय—श्रीराधिकाके पक्षमें हैं अर्थात् वे सभी श्रीमती राधिकाको अपनी आराध्या देवी मानते हैं। श्रील रघुनाथदास गोस्वामी स्वरचित श्रीमनः शिक्षा नामक ग्रंथमें कहते हैं कि "श्रीमती राधिका हमारी आराध्या देवी हैं एवं श्रीकृष्ण उनके प्राण—प्रियतम हैं।" हम अपनी समस्त चेष्टाएँ श्रीमती राधिकाजीकी सेवाके लिए करते हैं। यदि श्रीराधिकाजी प्रसन्न हो जाती हैं, तो श्रीकृष्ण अपने—आप ही वशीभूत हो जायेंगे। भगवत्—भजनमें अग्रसर होने हेतु ऊर्जा या शक्ति प्राप्त करनेके लिये कार्तिक मासमें ऊर्जेश्वरी श्रीमती राधाजीकी प्रसन्नता हेतु ऊर्जाव्रतका पालन किया जाता है। इसलिए इस मासको **ऊर्जा—व्रत मास** भी कहा जाता है। इसी मासमें भजन एवं साधन करनेकी अत्यधिक शक्ति प्रदान करनेवाली भगवान् श्रीकृष्णकी अद्भुत—अद्भुत लीलाएँ हुईं, जिनके श्रवणसे भक्तके हृदयमें भगवान्की स्वरूप—शक्तिका सञ्चार होता है और चिरदिनसे संसारमें तप्त हृदयको शीतलता मिलती है।

ऊर्जाका दूसरा अर्थ भक्ति या प्रेम है। शुद्धभक्ति या प्रेम श्रीमती राधिकाजीके हृदयसे प्रकाशित होता है, श्रीकृष्णके हृदयसे नहीं, क्योंकि वे तो उस प्रेमके विषय या आस्वादक हैं। श्रीराधाजी ऊर्जेश्वरी हैं, वे ऊर्जा देती हैं अर्थात् वे सभीको अप्राकृत प्रेम, स्नेह, प्रीतिकी ऊर्जा प्रदान करती हैं, यहाँ तक कि श्रीकृष्णको भी ऊर्जा प्रदान करती हैं। श्रीकृष्ण उनके बिना जीवित तक नहीं रह सकते अर्थात् श्रीमती राधाजीके बिना श्रीकृष्ण निर्विशेष ब्रह्म हैं। श्रीराधाजीकी आराधनाके बिना श्रीकृष्णकी प्राप्ति नहीं हो सकती है।

'ऊर्जा—व्रत' का यथार्थ अर्थ 'राधा—व्रत' हैं अर्थात् श्रीमती राधारानीकी प्रसन्नताके लिये पालन किया जानेवाला व्रत। इस मासमें श्रीमती राधाजीकी महिमा श्रवण करनेसे गोपी—प्रेमरूपी फल प्राप्त होता है।

इस मासमें हमारे सभी गौड़ीय—वैष्णव नियमपूर्वक एवं अपतित रूपसे अपना साधन—भजन करते हैं, इसलिए इसे **नियमसेवा—मास** भी कहा जाता है।

इसी कार्तिक—मासमें श्रीयशोदा माताने कृष्णके उदरको अपनी वात्सल्य—प्रेमरूपी दाम अर्थात् रज्जुसे प्रकाशित रूपमें बाँधा था एवं गोपियोंने विशेषतः श्रीमती राधाजीने उनके उदरको मधुर—प्रेमरूपी दाम अर्थात् रज्जुसे अप्रकाशित रूपमें बन्धन किया था, इसलिए श्रीकृष्णका नाम दामोदर हो गया तथा इसी मासमें इस लीलाके घटित होनेके कारण इस मासको **दामोदर—मास** भी कहा जाता है। श्रीकृष्ण दामोदर हैं तथा इस दामोदर—मासकी अधिष्ठात्री देवी होनेके कारण श्रीराधाजी दामोदरी भी कहलाती हैं। वास्तवमें श्रीकृष्ण सर्वशक्तिमान सर्वनियन्ता परब्रह्म होनेपर भी माता यशोदाके वात्सल्य—प्रेम तथा श्रीमती राधाके मधुर—प्रेमके समक्ष स्वयं ही वशीभूत होकर बँध गये। श्रीमती राधिकाके बिना कोई भी श्रीकृष्णको

सम्पूर्णरूपसे एवं सब समयके लिए नहीं बाँध सके हैं। माता यशोदा श्रीकृष्णको एक दिनके लिए बाँध सकती हैं, किन्तु श्रीमती राधिकाजी तो नित्यकालके लिये ही उन्हें बाँध सकती हैं।

इसी कार्तिक–मासमें गोपियोंने गाँठोली ग्राममें श्रीमती राधिकाकी ओढ़नीको श्रीकृष्णकी पीली चादरसे बाँध दिया था, इसीलिए श्रीकृष्ण 'श्रीराधाजीके दामोदर' तथा यह मास 'दामोदर मास' कहलाता है।

कार्तिक–व्रतके समयका निर्णय

आश्विन मासके अन्तिम दिनोंमें विजया–दशमीके पश्चात् आनेवाली एकादशी, द्वादशी अथवा पूर्णिमाको कार्तिक व्रतका आरम्भ होता है तथा कार्तिक–मासके अन्तिम दिनोंमें उत्थान एकादशी अथवा उसके पश्चात् आनेवाली द्वादशी एवं पूर्णिमाको इसकी समाप्ति होती है। उत्थान एकादशीसे पूर्णिमा तकके अन्तिम पाँच दिन भीष्म पञ्चकके नामसे जाने जाते हैं। अर्थात् जो व्यक्ति किन्हीं कारणोंसे चातुमास्यके अन्तर्गत कार्तिक–व्रतका पालन नहीं कर पाये, उनके द्वारा अन्ततः इन अन्तिम पाँच दिनोंमें निष्ठापूर्वक व्रत–नियम पालन करनेसे परमार्थिक लाभकी प्राप्ति होगी।

कार्तिक–मासकी विशेषता

प्रेमके विषयमें श्रीमती राधिकाजी श्रीकृष्णकी भी गुरु हैं। कार्तिक मासमें यदि कोई विशेष रूपसे श्रीमती राधिकाकी पूजन, स्तवन आदि द्वारा आराधना करता है, तो श्रीकृष्ण उस व्यक्तिके वशीभूत हो जाते हैं। इस मासमें नियमपूर्वक वैष्णव–सेवा, स्तव–स्तुति, श्रवण–कीर्त्तन, धाम–परिक्रमा, तथा श्रीराधाकृपाकटाक्ष–स्तवराजके नियमित पाठ करने मात्रसे श्रीश्रीराधादामोदर प्रसन्न हो जाते हैं। कार्तिक मासकी एक अपूर्व विशेषता यह है कि इस मासमें श्रीकृष्णकी स्तुति करनेसे श्रीमती राधारानी सन्तुष्ट हो जाती हैं, तथा श्रीमती राधारानीकी स्तुति करनेसे श्रीकृष्ण सन्तुष्ट हो जाते हैं। जो इस मासमें श्रद्धापूर्वक यमुना–पूजन तथा यमुना स्नान आदि करते हैं, उन्हें यम महाराज अथवा उनके दूत कभी भी स्पर्श नहीं करते।

इस मासमें श्रीमती राधारानीकी आराधना करनेसे पृथकरूपसे श्रीकृष्णकी आराधना करनेकी कोई आवश्यकता नहीं रहती, क्योंकि श्रीकृष्ण ऐसे व्यक्तिके पीछे स्वयं ही धावित होते हैं—यही उनका स्वभाव है।

इस दामोदर–व्रतका पालन करनेसे भक्तोंके हृदयमें ऐसे प्रेमका प्रादुर्भाव होता है, जिससे परब्रह्म श्रीकृष्ण स्वयं ही बँध जाते हैं।

दीपदान आदि करनेसे श्रीश्रीराधाकृष्णयुगलकी कृपा प्राप्त होती हैं। इस मासमें श्रीदामोदराष्टक, श्रीनन्दनन्दनाष्टक

कार्तिक–व्रतके पालन हेतु स्थानका निर्णय

अस्मदीय गुरुपादपद्म नित्यलीलाप्रविष्ट ॐ विष्णुपाद अष्टोतरशत श्रीश्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराज कार्तिक–व्रतका पालन श्रीवृन्दावन, नवद्वीप, पुरी, द्वारका, अयोध्या, नैमिषारण्य, हरिद्वार इत्यादि धामों, तीर्थ–स्थलियोंमें रहकर करते थे।

कार्तिक–व्रतका पालन घरपर रहकर ही करना उचित नहीं है। शास्त्रोंमें किसी–न–किसी तीर्थ–स्थानमें जाकर साधुओंके संगमें इस व्रतको पालन करनेका निर्देश दिया गया है–

प्रदक्षिणञ्च यः कुर्यात् कार्त्तिके विष्णुसद्मनि।
विष्णोः पूजा कथा विष्णोर्वैष्णवानाञ्च दर्शनम्।
न गृहे कार्त्तिके कुर्याद्विशेषेण तु कार्त्तिकम्।
तीर्थे तु कार्त्तिकीं कुर्यात् सर्वयत्नेन भाविनी॥

(श्रीहरिभक्तिविलास १६/६९,३०,१८६)

[अर्थात् कार्तिक–मासमें विष्णुके मन्दिरकी परिक्रमा करनी चाहिए। इस मासमें विष्णुका पूजन, विष्णुकी कथाका श्रवण और वैष्णवोंका दर्शन अर्थात् सत्संग करना चाहिये। कार्तिक–मास अर्थात् ''कार्तिक–व्रत'' को अपने घरपर रहकर ही पालन नहीं करना चाहिये, अपितु परम आदरके साथ किसी तीर्थ–स्थानोंमें वास करते हुए इसका पालन करना चाहिए।]

बहुतसे लोगोंका कहना है कि क्या घरमें रहकर धर्म–कर्मका पालन नहीं किया जा सकता? इसके लिए तीर्थस्थानोंमें जानेकी आवश्यकता ही क्या है? शास्त्रोंने इसका उत्तर दिया है–यह सत्य है कि धर्म–कर्मका पालन सभी स्थानोंमें ही किया जा सकता है, किन्तु उन सभी स्थानोंमें सत्संगका होना उचित ही नहीं अपितु अनिवार्य है। सत्संगके अभावमें तीर्थ–यात्रा आदि ही जब व्यर्थ हो जाते हैं, तब फिर घरमें रहकर धर्म–कर्म आदि करनेकी निष्फलताका तो कहना ही क्या? अपनी चेष्टा या विद्याबुद्धिके द्वारा तत्त्व–वस्तु–भगवान् एवं भक्तिका सम्यक् ज्ञान नहीं हो सकता। साधु–संगमें ही भक्ति–वृत्ति उदित होती है। शुद्ध–भक्तोंके मुखसे भगवान्की वीर्यवती कथाओंका श्रवण करनेसे ही जीवोंका वास्तविक कल्याण होता है। धाममें साधुओंका सङ्ग अनायास ही प्राप्त हो जाता है। विषयोंमें फँसे हुए सांसारिक जीवोंको धाममें रहकर साधुसङ्ग करनेके सुयोग बहुत कम ही मिलते हैं, इसलिए शास्त्रोंमें अन्ततः वर्षमें एक मासके लिये साधुसंगके उद्देश्यसे धामवास करनेका निर्देश दिया गया है।

कार्तिक–व्रतके पालनके सम्बन्धमें गौड़ीय–गुरुवर्गका आदर्श

जगतवासियोंको साधुसङ्ग, नाम–सङ्कीर्त्तन, भागवत श्रवण, धामवास तथा श्रीमूर्तिकी सेवाका परम सौभाग्य प्रदान करनेके लिये ही महाजनोंकी वाणी और सात्वत–वैष्णव–स्मृति श्रीहरिभक्तिविलासके उपरोक्त वचनको मस्तकपर धारणकर नित्यलीला प्रविष्ट श्रीश्रीमद्भक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी प्रभुपाद तथा मेरे परमाराध्य गुरुदेव श्रीश्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराज प्रत्येक वर्ष कार्त्तिक–मासमें कार्त्तिक व्रतका पालन करनेके लिए भगवत् धामकी परिक्रमाकी व्यवस्था करते थे। इससे जगत्वासियोंको पारमार्थिक कल्याण लाभ करनेका परम सुयोग प्राप्त होता है।।

गौड़ीय गुरुवर्गका अनुगमन

परमाराध्य ॐ विष्णुपाद अष्टोतरशतश्री श्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराजके चरणाश्रित होनेपर उनकी अहैतुकी कृपासे मुझे सन् १९४७ई॰ से ही बहुत बार उनके साथ ब्रजमण्डलकी सभी लीलास्थलियोंके दर्शनोंका सौभाग्य प्राप्त हुआ था। उनके अप्रकट–लीलामें प्रवेशके पश्चात् भी श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिके प्रवीण वैष्णवोंके आनुगत्यमें कई बार मुझे उपरोक्त लीलास्थलियोंकी परिक्रमा और दर्शनका सौभाग्य प्राप्त हुआ है। परमाराध्य श्रीगुरुदेवने १९५४ ई॰ में मुझे श्रीकेशवजी गौड़ीय मठका सेवाभार दायित्व प्रदान किया था। तभीसे मैं श्रीकेशवजी गौड़ीय मठके ब्रह्मचारियों एवं मथुराके कुछ श्रद्धालु सज्जनोंको साथ लेकर प्रतिवर्ष ब्रजमण्डलकी परिक्रमा करता आ रहा हूँ। इस प्रकार मुझे लगभग पचास वर्षोंमें पचास बार ब्रजमण्डल–परिक्रमा करनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ है।

जो व्यक्ति यह सोचता है कि मैंने तो दो बार सम्पूर्ण व्रजमण्डलकी परिक्रमा कर ली है, अतः बार–बार जानेकी क्या आवश्यकता है, क्योंकि उन्हीं स्थानों पर तो लेकर जाते हैं—वह वास्तवमें तीर्थयात्राके परिश्रमको वहन करनेवाला भारवाही गधा है, सत्सङ्गके सुयोगको ग्रहण करनेवाला सारवाही नहीं।

व्रतका एक उद्देश्य–जागतिक आसक्तियोंको सहजमें ही दूर करना

एकादशी, जन्माष्टमी, ऊर्जाव्रत, गौर पूर्णिमा आदि व्रतोंका श्रद्धाके साथ नियमपूर्वक पालन करनेसे संसारिक आसक्तियाँ सहज ही दूर हो जाती हैं। व्रत और नियमोंका एक उद्देश्य जागतिक आसक्तियोंको दूर करना भी है। साधुसंगमें रहते–रहते कुछ ही दिनोंमें मन परिष्कृत हो जाता है, विषयासक्ति नष्ट हो जाती है, हृदयमें भक्तिका अंकुर उत्पन्न हो जाता है। धीरे–धीरे वैष्णवोंके आचार–विचार–व्यवहारके प्रति रुचि उत्पन्न होती है।

कार्तिक–व्रत पालन करनेके अधिकारी

कार्तिक–मास एवं ऊर्जा–व्रतकी महिमाका वर्णन करते हुए मेरे ज्येष्ठ गुरुभ्राता पूज्यपाद श्रीभक्तिवेदान्त त्रिविक्रम महाराज बतलाते थे कि वास्तवमें यह व्रत उन्नत भक्तोंके द्वारा ही पालनीय हैं। अर्थात् उच्च अधिकारी भक्त ही इस व्रतका सुष्ठुरूपसे पालन करनेमें समर्थ हैं। साधारण भक्त इस व्रतको पालन करनेमें अयोग्य हैं। इसलिए

गुरुपादपद्मके आशीर्वादसे कनक–कामिनी–प्रतिष्ठा आदि मलसे मुक्त शुद्ध–नामाश्रित भक्तोंके आनुगत्यमें इस व्रतका पालन करना ही कर्तव्य है। मनमें सदैव यही विचार रखना चाहिए कि व्रतका पालन तो श्रील गुरुदेव एवं शुद्धभक्त ही कर रहे हैं। यदि इस व्रतका पालन करनेमें मैं इनकी लेशमात्र भी सेवा कर पाया, तो मेरा जीवन धन्य हो जायेगा। किसी–न–किसी दिन मेरी इस निष्कपट सेवा–वृत्तिको देखकर इनकी कृपा होनेपर मैं भी इस व्रतको सुष्ठुरूपसे पालन करके ऊर्जेश्वरी श्रीमती राधाजीको प्रसन्न करनेकी चेष्टा करूँगा। सभीको अपने–अपने अधिकारानुसार इस व्रतका पालन करनेकी यथेष्ट चेष्टा करनी चाहिए।

इस व्रतका उद्देश्य केवलमात्र संसारसे मुक्ति अथवा सांसारिक भोगोंकी प्राप्ति नहीं है। यह व्रत तो श्रीकृष्ण एवं उनके सर्वश्रेष्ठ भक्तोंकी कृपा प्राप्तिके लिए है। यत्नके साथ नियमपूर्वक पालन करनेसे समस्त मनोकामनाएँ पूर्ण होती हैं।

कार्तिक–व्रतके समय ही श्रीव्रजमण्डल–परिक्रमाके आयोजनका कारण

गौड़ीय–वैष्णवगण श्रीचैतन्य महाप्रभुके व्रजभ्रमणका अनुसरण करते हैं। इसके अनुसार कुछ भक्त आश्विन मासमें विजया दशमीके पश्चात् शरत् कालमें परिक्रमा आरम्भ करते हैं, क्योंकि श्रीचैतन्य चरितामृतके अनुसार श्रीमन्महाप्रभु श्रीनीलाचल धामसे व्रजमण्डलका दर्शन करनेके लिए लगभग इसी समय पधारे थे। कुछ गौड़ीय वैष्णवगण आश्विन मासकी शुक्ल–एकादशीसे कार्तिक–व्रत, नियम–सेवा आरम्भ करके उसी दिनसे ब्रजमण्डल परिक्रमा प्रारम्भ करते हैं, तथा कार्तिक–मासके शुक्ल पक्षकी देवोत्थान एकादशीको व्रत एवं परिक्रमाका समापन करते हैं। अधिकांश गौड़ीय–वैष्णव शारदीय–पूर्णिमाके दिनसे कार्तिक, नियम–सेवा या ऊर्जाव्रतका पालन एवं ब्रजमण्डल परिक्रमाका संकल्प करते हैं, तथा देवोत्थान एकादशीके पश्चात् कार्तिक हैमन्तिकी पूर्णिमाके दिन कार्तिक व्रत एवं ब्रजमण्डल परिक्रमाका समापन करते हैं।

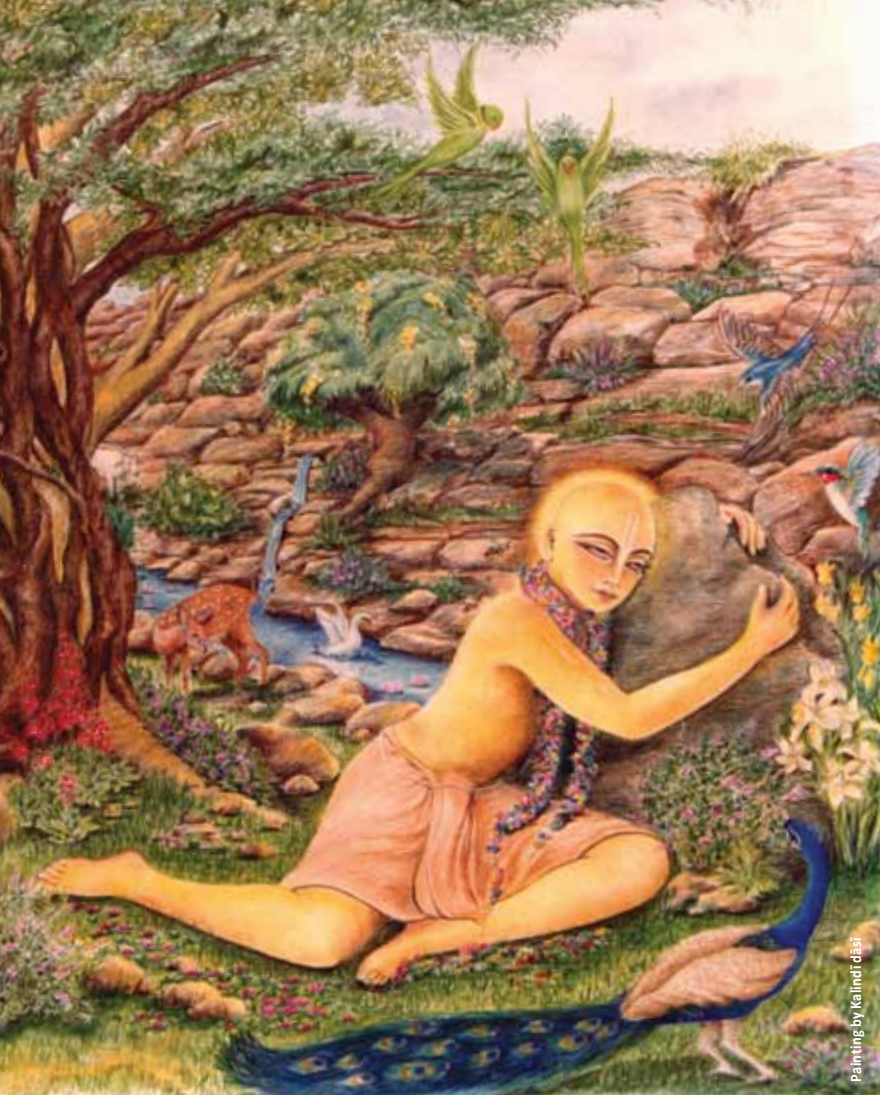

यदि कोई प्रश्न करें कि शास्त्रोंमें एक स्थान पर रहकर ही कार्तिक–व्रत पालनका निर्देश है, अतः हम वृन्दावन, गोवर्द्धन या राधाकुण्डमें अथवा व्रजके किसी एक स्थानपर रहकर ही कार्तिक–व्रतका शान्तिपूर्वक पालन क्यों नहीं करें? वन–वनमें भ्रमण करनेकी क्या आवश्यकता है? इसके उत्तरमें श्रीमन्महाप्रभु एवं उनके परिकर श्रीरूप–सनातन तथा हमारे श्रीरूपानुग गुरुवर्गके आदर्शको देखना होगा। श्रीमन्महाप्रभु और श्रीरूप–सनातन व्रजमें स्थान–स्थानपर जाकर एक–एक वृक्षके नीचे क्यों रहते थे? जगद्गुरु श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती प्रभुपाद एवं मदीय परमाराध्यतम गुरुपादपद्म श्रीश्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराज कार्तिक मासमें व्रजमण्डल परिक्रमाके समय समस्त चौरासी कोसकी परिक्रमा करते थे। यदि कोई केवल दूध ही पीता रहे, तो वह दही, माखन, पनीर आदि विभिन्न दूध जातीय रसोंके आस्वादनसे वञ्चित हो जायेगा।

व्रजमें अखिल रसामृतमूर्ति व्रजविहारी श्रीकृष्ण अपनी ह्लादिनी शक्तिकी सार महाभावस्वरूपा श्रीमती राधिका एवं स्वपरिकरोंके सहित नित्य–विहार करते हैं। यहाँ उनकी परम रसमयी रास एवं अन्यान्य क्रीड़ाएँ, नित्यलीलाएँ सदैव गतिमान रहती है। यह व्रज रसपूर्ण संकेतों और संदेशोंकी स्थली है। इसके अतिरिक्त इस व्रजमें आदिपुरुष श्रीगोविन्दका अपनी स्वरूपभूता गोपाङ्गनाओंके साथ सरस–विहार–विलास सदा–सर्वदा गतिमान रहता है। जहाँ उस विहारका न आदि है और न अन्त। जहाँ केवल प्रेम ही प्रेम बिखरा पड़ा है और उस प्रेम–समुद्रमें उन्नत–उज्ज्वल–प्रणयरस सदा उच्छलित होता रहता है। व्रजमें रस ही रस है तथा रसिक एवं भावुकजन इस व्रज रसका निरन्तर आस्वादन करते हैं।

श्रीमद्भागवतमें व्रजका अत्यन्त मर्मस्पर्शी वर्णन है–

पुण्या वत ब्रजभुवो यदयं नृलिङ्ग
गूढ़ः पुराणपुरुषो वनचित्रमाल्यः।
गाः पालयन् सहबलः क्वणयंश्च वेणु
विक्रीडयाञ्चति गिरित्ररमार्चितांघ्रिः॥

(श्रीमद्भा॰ १०/४४/१३)

आपके प्रति अत्यधिक प्रसन्न हूँ। अतः आप अपने अभीष्ट वरको माँग लीजिए।" ऐसा सुनकर श्रीनारद मुनि 'जय जय' ध्वनि करने लगे तथा वीणा वादन करते हुए वर प्रदान करनेवाले श्रीकृष्णके व्रजलीलासे प्रकटित—हे यशोदानन्दन! हे गोपीजनप्रिय! हे गोपीजन—मनोहर! आदि नामोंका कीर्त्तन करते हुए स्तुति करने लगे। तदुपरान्त प्रसन्नतापूर्वक नृत्य करते—करते वरकी प्रार्थना करते हुए कहने लगे—"हे स्वयंको दान देकर भी अतृप्त रहनेवाले श्रीकृष्णचन्द्र! हे व्रजवासियोंके प्रेमरूप सरोवरमें विचरण करनेवाले राजहंस! आपकी व्रज—सम्बन्धी क्रीड़ा तथा श्रीवृन्दावन आदि व्रजभूमिके स्पर्श मात्रसे स्वतः ही वहाँ हुई लीलाओंके कीर्त्तन आदिका साधन सफल हो जाता है, क्योंकि सर्वदा आपका स्मरण कराना ही इस व्रजभूमिका स्वभाव है। व्रजकी नदियाँ, पर्वत, वन—प्रदेश आदि पुनः—पुनः आपका स्मरण करा देते हैं। अतएव यदि कोई भी व्यक्ति दृढ़ निश्चय करके अर्थात् उन समस्त लीलाओं और लीला—स्थलियोंके माहात्म्यमें दृढ़ विश्वास करके, वचनसे अर्थात् मुखसे वर्णन करके, नेत्रसे दर्शन करके, कानसे श्रवण करके अथवा अन्य किसी अङ्ग—प्रत्यङ्गके द्वारा एक बार भी आपकी उन—उन लीलाओं और लीला—स्थलियोंका स्पर्श करे, तो उसे निश्चय ही श्रीराधिका आदि गोपियोंके कुच—कलशरूप मङ्गलघटके कुंकुम द्वारा शोभायमान आपके श्रीचरणकमलोंके प्रति नित्य प्रेमभक्तिकी प्राप्ति हो—मैं यही वर माँगता हूँ। आपकी उक्त कृपाको प्राप्त करनेके लिए किसी भी जाति, आश्रम आदिस सम्बन्धित होनेकी

अर्थात् सखि! सच पूछो तो ब्रजभूमि ही परम पवित्र और धन्य है, क्योंकि यहाँ पुरुषोत्तम भगवान् मनुष्यके वेशमें छिपकर निवास करते हैं। स्वयं देवादिदेव महादेव शंकर और श्रीरमादेवी जिनके श्रीचरणोंकी पूजा करते हैं, वे भगवान् ही यहाँ रंग—बिरंगे पुष्पोंकी माला धारण किये हुए हैं। वे प्रभु भैया बलरामजी तथा गोपसखाओंके साथ मधुर वंशी बजाते हुए, गऊओंको चराते हुए विभिन्न प्रकारकी क्रीड़ाओंमें मग्न होकर आनन्दसे विहार करते हैं। उनके श्रीचरणोंके स्पर्शसे यह ब्रजभूमि धन्य एवं कृत—कृत्य हो जाती है।

विशेषतः श्रीबृहद्भागवतामृतम् (१/७/१४४) में श्रील सनातन गोस्वामी वर्णन करते हैं कि जब श्रीकृष्णने श्रीनारदसे कहा—"हे देवर्षि! आपने मुझे अति उत्तम रूपसे गोपियोंका स्मरण कराकर मेरा परम उपकार किया है। मैं

आवश्यकता न हो।" अङ्ग–प्रत्यङ्ग द्वारा लीलाओंको स्पर्श करनेका तात्पर्य है कि उन–उन लीलाओंके विज्ञापक श्रीमद्भागवत–महापुराण आदिका स्पर्श। वाक्य द्वारा स्पर्श करनेका तात्पर्य है–व्रजभूमिसे सम्बन्धित महिमाका कीर्त्तन करना। अङ्ग द्वारा लीलास्थलियोंको स्पर्श करनेका अर्थ है–व्रजरजके सम्पर्कमें आना, अर्थात् व्रजकी रजसे अपने अङ्गोंको स्पर्श करना।

श्रीनारदजीके द्वारा श्रीकृष्णसे माँगे गये वरके अनुसार यदि कोई व्यक्ति श्रीकृष्णकी उन मधुर लीला–स्थलियोंमें जाता है और श्रद्धापूर्वक उन लीला–स्थलियोंको प्रणाम करके वहाँपर श्रीकृष्णके द्वारा की गयी मधुर–लीलाओंका श्रवण करके उन लीला–स्थलियोंकी रजसे अभिषिक्त होकर उनकी कृपाकी भिक्षा करता है, तो उसके लिए अत्यन्त दुर्लभ प्रेमको प्राप्त करना भी सुलभ हो जाता है और उसका हृदय सेवा–वासनासे युक्त हो जाता है। यह निगूढ़ सत्य है, इसमें संशय नहीं करना चाहिए। अतएव हमें दृढ़ विश्वास होना चाहिए कि कार्तिक मासमें श्रीव्रजमण्डल परिक्रमाके अन्तर्गत सभी लीलास्थलियोंमें जाकर वहाँ कि महिमा–सूचक हरिकथाके श्रवण तथा लीलास्थलियोंके दर्शन, वहाँ की रजमें अभिषिक्त होने रूपी सहज साधनोंका पालन करनेसे हम कृष्णप्रेमको प्राप्त करनेमें अवश्य ही सफल होंगे। हम कृष्णप्रेम प्राप्त करेंगे ही तथा ऐसा करनेसे हमें श्रीराधाकृष्ण युगलकी सेवा प्राप्त होगी ही। लीलास्थलियोंपर जाकर श्रद्धापूर्वक चित्त निवेश करके हरिकथाका श्रवण करना चाहिए। किसी प्रकारकी जागतिक कामना नहीं रखनी चाहिए तथा हरि–गुरु–वैष्णवोंकी सेवाके लिए कार्य करना चाहिए, न कि अपने सुखके लिए। ऐसा करनेसे ही यथार्थ रूपमें कार्तिक–व्रतका पालन होगा, अन्यथा वञ्चित हो जाना पड़ेगा। चित्त स्थिर करके 'श्रीमनः शिक्षा', 'श्रीउपदेशामृत' आदि गोस्वामी ग्रन्थोंका श्रवण–कीर्त्तन अनुशीलन करते हुए कार्तिक–मासका पालन करनेकी चेष्टा करनी चाहिए।

मुझे श्रीकृष्ण द्वारा श्रीनारद ऋषिको दिये गये वरदानमें दृढ़ विश्वास है। श्रीकृष्ण कभी भी अपने भक्तोंकी इच्छाको अपूर्ण नहीं रखते, बल्कि सदैव अपने भक्तोंकी अभिलाषाको पूर्ण करनेके लिये लालायित रहते हैं। श्रीराधा–दास्यकी प्राप्तिके लिये ही हम श्रीव्रजमण्डलकी परिक्रमा करते हैं। हम परिक्रमा करनेपर भी हरिकथाके श्रवण तथा कीर्त्तन पर ही अधिक गुरुत्व देते हैं।

इस व्रजमण्डल परिक्रमाका आयोजन हमें प्रचुर साधुसङ्ग, हरिकथा श्रवण–कीर्तन एवं धामदर्शनका सुअवसर प्रदान करता है, जिससे साधन–भजनमें हमारा उत्साह वर्द्धित होता है।

व्रजकी लीलास्थलियोंके दर्शनके लिए जिस किसी स्थानपर भी हम जाते हैं, वहाँकी रज न चाहते हुए भी हमें स्पर्श करती है। इसका क्या फल हो सकता है, वह हम नहीं देख सकते। जिनको दिव्यदृष्टिकी प्राप्ति हो चुकी है, जो महाभागवत हैं, केवल वे ही इसका फल देख सकते हैं।

व्रजमण्डल परिक्रमाके नियम

सर्वप्रथम ब्रजमण्डल परिक्रमाके लिए संकल्प ग्रहण करना चाहिए। इसके लिए किसी सरल, शास्त्रोंके तात्पर्यको जाननेवाले, सदाचारी, दयालु, निर्मत्सर, तत्त्वज्ञ, निर्लोभी एवं भजन–परायण वैष्णव, भक्त, तीर्थगुरु या व्रजवासी पुरोहितके द्वारा संकल्प ग्रहण करके परिक्रमा आरम्भ करनी चाहिए। परिक्रमाके समय विधि एवं निषेधोंका यथा–साध्य पालन करना चाहिए–

विधि–सत्य बोलना, ब्रह्मचर्यपूर्वक रहना, पृथ्वीपर शयन करना, दूसरोंके अपराधोंको क्षमा करना, तीर्थोंमें स्नान करना, आचमन करना, भगवान्‌को निवेदित प्रसादका ही सेवन करना, तुलसीमालापर हरिनाम जप या वैष्णवोंके साथ हरिनाम संङ्कीर्त्तन करना चाहिए। परिक्रमाके समय मार्गमें स्थित ब्राह्मण, श्रीमूर्ति, तीर्थ और भगवद्लीला स्थलियोंका विधिपूर्वक सम्मान एवं पूजा करते हुए परिक्रमा करनी चाहिए।

निषेध—क्रोध नहीं करना, परिक्रमा पथमें वृक्ष, लता, गुल्म, गो आदिको नहीं छेड़ना, ब्राह्मण, वैष्णवादि तथा श्रीमूर्तियोंका अनादर नहीं करना, साबुन, तेल और खोर कार्य (मुण्डन आदि)का वर्जन करना, चींटी इत्यादि जीव हिंसासे बचना, परनिन्दा, परचर्चा और कलहसे सदा बचना—ये सब निषेध हैं।

ब्रह्मचर्यपूर्वक इस मासमें निर्दिष्ट नियमोंका पालन करना चाहिए। सत्य बोलना, निन्दा रहित होकर संख्यापूर्वक हरिनाम एवं अनुशीलन इत्यादिको चेष्टापूर्वक करना चाहिए।

कार्तिक मासमें उपस्थित होनेवाली विशेष-विशेष तिथियोंका विवरण

श्रीकृष्ण द्वारा व्रजमें की जानेवाली समस्त लीलाओंका एकमात्र कारण श्रीमती राधारानीको प्रसन्न करना है। कार्तिक मासकी अधिष्ठात्री देवी श्रीमती राधारानी हैं, इसलिए श्रीकृष्णने अपनी अनेकानेक लीलाएँ इसी मासमें ही की हैं। केवल इतना ही नहीं, अनेकानेक उन्नत एवं रसिक गौड़ीय-वैष्णवाचार्योंका आविर्भाव या तिरोभाव भी इसी परम पवित्र कार्तिक मासमें ही हुआ है।

श्रीश्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराजकी तिरोभाव-तिथि एवं शरद-पूर्णिमा

कार्तिक मासकी शरद पूर्णिमाके दिन मेरे गुरु महाराजकी अत्यन्त शुभ विरह-तिथि है। शरद-ऋतुमें पूर्णिमाकी सन्ध्याको जब श्रीकृष्ण रासका उपक्रम कर रहे थे, तभी मेरे गुरु महाराज श्रीकृष्णकी अप्रकट लीलामें प्रविष्ट हो गये। श्रीकृष्णकी शारदीय रासलीलामें प्रवेश करनेकी ही उनकी अभिलाषा थी। वे उसी समय अप्रकट हुए थे जब प्रदोष कालमें चंद्र उदय हो रहा था, जैसा कि रासलीलाके प्रारम्भमें श्रीमद्भागवतम्में वर्णन किया गया है।

रसिक एवं भावुक भागवत

परमाराध्यतम श्रील गुरुदेव नित्यलीला प्रविष्ट श्रीश्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराज भक्तिविरोधी केवलाद्वैतवादियों, स्मार्तों, जाति-गोस्वामियों, जाति-वैष्णवों एवं प्राकृत सहजिया अपसम्प्रदायके लोगोंके लिए परम गम्भीर एवं वज्रकी अपेक्षा भी अधिक कठोर थे। तथा परम रसिक, महाभावुक गुरुसेवानिष्ठ सतीर्थों और निष्कपट शिष्योंके प्रति पुष्पसे भी अधिक मृदुस्वभाव सम्पन्न थे।

एक बार जब श्रील गुरु महाराजने सहजिया लोगोंके विरुद्ध कुछ कठोर शब्दोंका व्यवहार किया, तो जज़ने उन्हें परामर्श देते हुए कहा कि आप मधुर शब्दोंका प्रयोग करें। इसके उत्तरमें श्रील गुरुदेवने व्रजकी अपेक्षा अधिक कठोर शब्दोंमें कहा-"मैं इस संसारमें मधुर शब्दोंका प्रयोग करनेके लिए नहीं आया हूँ। मैं संन्यासी हूँ। हम संन्यासियोंको ही कठोर भाषा बोलनेका अधिकार है। हमारे अतिरिक्त और कोई भी ऐसा नहीं कर सकता है। यदि हम ही कटु किन्तु मङ्गलकारी शब्दोंका प्रयोग नहीं करेंगे, तो फिर कौन करेगा?" श्रील गुरुदेवकी बात सुनकर जज निरुत्तर हो गया।

श्रील गुरु महाराज द्वारा रचित श्रीगोविन्द-लीलामृत तथा श्रीकृष्ण भावनामृत आदि ग्रन्थोंके सार-स्वरूप 'मङ्गल श्रीगुरु-गौर' मङ्गल-आरति एवं 'राधाचिन्ता-निवेशेन' श्रीराधाविनोदविहारी -तत्त्वाष्टकम् उनके परम रसिक होनेका स्वतः सिद्ध प्रमाण है।

एक समय श्रील गुरुपादपद्म कार्तिक-मासमें श्रीकेशवजी गौड़ीय मठमें पधारे थे। एक दिन वे अपनी भजनकुटीमें बैठे हुए भावपूर्वक हरिनाम कर रहे थे। मैं भी उनकी भजनकुटीमें एक ओर बैठकर श्रीगोपालचम्पूमें-से श्रीदामोदर-बन्धनका प्रसंग पढ़ रहा था। मैं उसे पढ़कर

जीव गोस्वामीके विचारोंके प्रति इतना आकर्षित हुआ कि अपनेको रोक न सका। ग्रन्थको हाथोंमें लेकर श्रील गुरुदेवके सम्मुख खड़ा होकर कहने लगा—"श्रीजीव गोस्वामी अपने समयके एक महान् दार्शनिक तत्त्ववेत्ता महापुरुष थे। साथ–ही वे एक अप्राकृत रसिक कवि भी थे। साधारण जगतमें पाण्डित्य और कवित्वका सम्मिलन नितान्त दुर्लभ होता है। परन्तु श्रीजीव गोस्वामीके जीवनमें इन दोनोंका आश्चर्यजनक सम्मिलन देखा जाता है। गोपालचम्पूके दामोदर–बन्धन–लीलाके प्रसंगमें श्रील जीव गोस्वामीके इन दोनों गुणोंका समन्वय दृष्टिगोचर होता है।" यह कहकर मैं गोपालचम्पूसे वह प्रसंग पढ़कर श्रील गुरुदेवको सुनाने लगा—

"यशोदा मैयाने बड़ी तेजीसे दौड़कर राजमार्गपर भागते हुए बालकृष्णको एक हाथसे पकड़ लिया और दूसरे हाथमें एक छोटी–सी लठिया लेकर कृष्णकी भर्त्सना करने लगी—"मैं तुम्हें पीटूँगी; तू घर–घरमें चोरी करता है, तू चोर है।"

कृष्ण—"मैया री! मुझे मत मार! चोर तो तुम्हारे पिताके गोत्रमें उत्पन्न होते हैं, मेरे पिताके गोत्रमें नहीं। मैं चोर नहीं हूँ।"

मैयाने मुस्कुरा दिया और बोलीं—"कैसे खण्डित हुआ यह दधिभाण्ड?"

कृष्ण—"यह तो है परमेश्वरका दिया हुआ दण्ड।"

मैया—"माखन किसने खिलाया बन्दरोंको?"

कृष्ण—"जिसने बनाया इन बन्दरोंको"

मैया (क्रोधपूर्वक हँसती हुई)—"ठीक ठीक बता! मटकी टूटी कैसे?"

कृष्ण (रोते हुए)—"जब तू उफनते हुए दूधको शान्त करनेके लिए हड़बड़ीमें वेगसे दौड़ी, तब तुम्हारे पैरोंके कड़े ठोकरसे ही तो मटकी टूटी। बता, भला इसमें मेरा क्या दोष है?"

मैया—"ठीक है! ये तो बता कि तेरे मुखमें मक्खन कैसे लगा?"

कृष्ण—"मैया री! प्रतिदिनकी भाँति उस बन्दरने मक्खन खानेके लिए मटकीमें हाथ दिया। मैंने उसे पकड़ लिया। जब वह हाथ छुड़ाकर भागने लगा तो उसके ही हाथका मक्खन मेरे मुखमें लग गया। अच्छा बता, इसमें मेरा कोई दोष है? फिर भी तू मुझे चोर कहती है और पीटना चाहती है।"

मैया—"अरे बड़बोला! बन्दर–बन्धो! अब तुझे तुम्हारे साथी ऊखलके साथ बाँधकर दण्ड दूँगी।"

तत्पश्चात् मैया बहुत चेष्टा करनेपर भगवत्कृपासे कृष्णको ऊखलसे बाँधकर घरके कार्योंको सँभालने अन्दर चली गई। बाल–कृष्ण नन्हें–मुन्ने सखाओंके साथ ऊखलको खींचते हुए घरके आङ्गनमें खड़े यमलार्जुन वृक्षके बीचसे निकलने लगे। ऊखलके स्पर्शसे ही दोनों वृक्ष अतिभयंकर गर्जनके साथ गिर पड़े। सभी व्रजवासी, जो जहाँ थे वहींसे ध्वनिको लक्ष्यकर उसी ओर दौड़े। नन्दबाबा और यशोदा मैया भी वहाँ उपस्थित हुए। यशोदा मैया दोनों गिरे हुए पेड़ोंके बीच पुत्रको देखकर सन्न रह

Photo ©Śaradā dāsi

गईं। नन्दबाबा आश्चर्यचकित होकर पुत्रके समीप पहुँचे और उसे अपनी गोदीमें बैठा लिया। पिताको देखकर कृष्ण बड़े जोरसे रोने लगे। नन्दबाबा कृष्णके सिर और अंगोंको अपने हाथोंसे सहलाकर मुख चूमते हुए पुचकारने लगे तथा उन्होंने कहा—"लाला! तुम्हें किसने बाँधा?" पुनः पुनः पूछनेपर रोते हुए कृष्णने बाबाके कानमें फुसफुसाकर कहा—"मैयाने।" नन्द बाबा गम्भीर होकर बोले—"मैया ने! तेरी मैया बड़ी निष्ठुर है!" और चुप हो गए।

अपनी गोदमें कृष्ण और बलदाऊ दोनोंको लेकर नन्द बाबाने यमुनामें स्नान किया। ब्राह्मणोंके द्वारा स्वस्तिवाचन कराया और गोदान इत्यादि किया। सायंकालमें गोशालामें आकर कृष्ण और बलदेवको श्वेत मिश्रीके साथ पेटभर धारोष्ण दूध पिलाया। फिर घरपर लौटकर बैठकमें पुत्रोंके साथ बैठ गये। रोहिणी मैयाने किसी प्रकार गोपियोंके द्वारा रसोई बनवायी और उन्हींके द्वारा राम और कृष्णके साथ नन्दबाबाको भोजन परोसवाया। नन्दबाबा दोनों पुत्रोंके साथ चुपचाप प्रसाद सेवनकर बैठकमें आ गए। दोनों पुत्रोंके साथ व्रजराज जब सायंकालीन भोजन समाप्त कर चुके, तब कुलकी वृद्धा गोपियाँ रोहिणीजीको साथ लेकर नन्द बाबाके समीप आईं। दोनों बच्चे बाबाकी गोदमें बैठे थे। रोहिणीजीने कहा—"राजन्! कृष्णकी मैयाने भोजन नहीं किया है। कोनेमें चुपचाप पत्थरकी भाँति बैठी हैं। घरमें सभी गोपियाँ भी बिना खाये–पीये उदास होकर चुपचाप बैठी हैं। व्रजराज दुःखमिश्रित हास्यपूर्वक बोले—"मैं क्या करूँ? क्रोधका यही फल है, वह इसे अनुभव करे!" आँसू बहाती हुई वृद्धा गोपियोंने कहा—"हाय! हाय! यशोदा तो भीतर–बाहरसे अत्यन्त कोमल है। उसके लिए ऐसे निष्ठुर शब्दोंका प्रयोग अनुचित है।" यह सुनकर व्रजराज और भी अधीर हो उठे और उन्होंने मुस्कुराते हुए कृष्णसे पूछा—"लाला! क्या मैयाके पास जाएगा?" कृष्ण बोले—"नहीं! नहीं! आप ही के साथ रहूँगा।" उपानन्दकी पत्नीने मुस्कराते हुए कहा—"बाबाके पास तो रहेगा, पर दुग्ध–पान कैसे करेगा?"

कृष्ण—"बाबा मिश्रीके साथ धारोष्ण दूध पिलाएँगे।"

"खेलेगा किसके साथ?"

"बाबा और दाऊ भैयाके साथ।"

व्रजराज—"रोहिणी मैयाके पास क्यों नहीं जाता?"

कृष्णने रोषपूर्वक सिसकते हुए कहा—"मैं तो अपनेको बचानेके लिए बड़ी मैयाको पुकार रहा था, किन्तु उस समय तो ये भी नहीं आईं।"

यह सुनकर आँसू बहाती हुई रोहिणी मैयाने धीरेसे कहा—"लाला! इतना निष्ठुर मत बन। तेरी मैया तेरे लिए रो रही है।"

इसे सुनकर कृष्णकी आँखोंमें आँसू छलक आए और मुड़कर पिताका मुख देखने लगे। इसी बीच रोहिणी मैयाने कृष्णको पकड़कर लानेके लिए बलदेवको संकेत किया। बलदेव दोनों हाथोंसे कृष्णको पकड़कर रोहिणी मैयाकी ओर खींचने लगे, पर कृष्ण बलदेवको झटककर बाबाके गलेसे लिपट गए। बाबाकी आँखोंसे भी आँसुओंकी झड़ी बहने लगी। उन्होंने अपने हाथको कुछ ऊँचा उठाकर कहा—"लाला! तेरी मैयाको पीट दूँ? बाल–कृष्ण इसे सह न सके और पिताके दोनों हाथ जोरसे पकड़ लिए। तदनन्तर स्वतःसिद्ध वात्सल्यके कारण यशोदाके अन्तर्हृदयकी वेदनाको स्मरण करते हुए हाथसे संकेत द्वारा बाबा बोले—"लाला! यदि तुम्हारी मैया ऐसी हो जाय अर्थात् मर जाय, तो तू क्या करेगा?" ऐसा सुनते ही कृष्ण बड़े जोरसे रोते हुए बोले—"मैया! मैया!" और अपने दोनों हाथोंको बड़ी मैयाकी तरफ पसारकर उनकी गोदीमें स्वतः ही चले गए। रोती हुई रोहिणी मैया रोते हुए कृष्णको लेकर अन्तःपुरमें आईं और कृष्णको यशोदा मैयाकी गोदमें डाल दिया। यशोदा मैया कृष्णको अपने अञ्चलोंसे ढककर कुररी पक्षीकी भाँति क्रन्दन करने लगीं। कृष्ण भी फूट–फूटकर रोने लगे। अन्तःपुरमें एकत्रित सारी गोपियाँ भी रोने लगीं। उधर बैठकमें नन्द बाबा भी रो रहे थे। सारा वातावरण वात्सल्य–रसमें डूब गया।"

यह प्रसंग सुनते ही श्रीलगुरुदेव भी फूट–फूटकर रोने लगे। उनकी आँखोंसे अविरल अश्रुधारा प्रवाहित होने लगी। कुछ–कुछ अष्टसात्त्विक विकार भी दृष्टिगोचर होने लगे। ऐसा अभूतपूर्व भाव मैंने अपने जीवनमें दो–एक बार ही देखा है।

गुरुकी प्रसन्नता ही भगवान्‌की सेवा–प्राप्तिका मूल कारण

मेरे परमाराध्यतम गुरुपादपद्म अपने गुरुदेव श्रील प्रभुपाद और भगवान्‌के प्रति सम्पूर्ण निष्ठावान् थे। इसलिए वे सदा निडर रहते थे। यदि श्रील प्रभुपादके विरुद्ध कोई कुछ कहता तो वे उसका कठोर रूपसे दमन करके ही शान्त होते थे।

सत्‌शिष्य ही अपने भजनके प्रभावसे सद्‌गुरुकी महिमाकी उपलब्धि कर सकता है। वह शिष्य चिन्ता करता है कि कहाँ तो मैं नालीका कीड़ा था और कहाँ मेरे श्रीगुरुदेव जिन्होंने मुझे व्रजकी भक्तिके मार्गपर लाकर खड़ा कर दिया है। भजनके प्रभावसे ही वह अपनेको उनका चिरऋणी समझेगा।

सत्‌शिष्य ही अपने भजनके प्रभावसे सद्‌गुरुकी महिमाकी उपलब्धि कर सकता है। वह शिष्य चिन्ता करता है कि कहाँ तो मैं नालीका कीड़ा था और कहाँ मेरे श्रीगुरुदेव जिन्होंने मुझे व्रजकी भक्तिके मार्गपर लाकर खड़ा कर दिया है। भजनके प्रभावसे ही वह अपनेको उनका चिरऋणी समझेगा।

श्रील गुरुदेव बहुत बार कहा करते थे—"मैं कहाँ था? मैं पुनः पुनः जन्म और मरणरूपी मायामें डूब रहा था। किन्तु श्रील भक्तिसद्धान्त सरस्वती प्रभुपाद अत्यधिक दयालु थे। उन्होंने कृपापूर्वक मेरी शिखाको पकड़कर मुझे भगवद्–सेवामें नियुक्त किया है।

मैं अपने परमाराध्य गुरुदेवके साथ रहकर उनकी विविध सेवाएँ करता था, इसीलिए मुझे उनसे श्रीश्रीराधाकृष्णकी लीलाकथाओंका श्रवण करनेका बहुत सुयोग प्राप्त हुआ था। उनकी कृपासे ही मैं श्रीमती राधाजीकी कुछ–कुछ महिमाको समझनेमें समर्थ हुआ हूँ। उन्हींकी कृपासे ही आज देश–विदेशके लोग मेरी हरिकथा श्रवण करनेके लिए आग्रहान्वित हैं और मैं विश्वमें जहाँ कहीं भी जाता हूँ, वहाँ लोग मुझे बहुत आदर–सम्मान देते हैं। श्रील गुरुदेवकी कृपासे ही मैंने श्रील प्रभुपादजीके प्रायः सभी परिकरोंकी कृपा प्राप्त की। मैं अत्यन्त सौभाग्यवान हूँ और मेरे इस सौभाग्यका एक ही कारण है—अपने गुरुदेवकी निष्कपट सेवा करना।

श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुरने श्रीमद्भागवत (४/२८/३४ श्लोककी) सारार्थदर्शिनी टीकामें गुरुसेवाके विषयमें लिखा है—"जिस प्रकार पतिव्रता रमणी पतिकी सेवामें निमग्न होकर पुत्रादिकी भी अपेक्षा नहीं करती, उसी प्रकार एकमात्र गुरुसेवाके द्वारा अनायास ही सब प्रकारके साध्योंकी सिद्धिके लिए गुरुसेवानिष्ठ शिष्य श्रवण–कीर्त्तनादिकी भी अपेक्षा नहीं करेंगे। पतिव्रता रमणी जिस प्रकार भोग और गृहकी अपेक्षा नहीं रखती, गुरुसेवामें प्रवृत्त शिष्यको भी उसी प्रकार श्रवण–कीर्त्तनादिके प्रेमानन्द और तदुचित भजनोपयोगी निर्जन स्थान आदिकी भी अपेक्षा नहीं करनी चाहिए। वेदोंमें गुरुसेवाकी ही सर्वाधिक प्रशंसा की गई है।"

श्रील नरोत्तम दास ठाकुरने भी लिखा है—

"श्रीगुरुचरणे रति, सेइ से उत्तमागति,
जे प्रसादे पूरे सर्व आशा।"

(प्रेमभक्तिचन्द्रिका)

[अर्थात् श्रीगुरुके चरणकमलोंमें रति हो जानेपर समस्त प्रकारकी कामनाएँ पूर्ण हो जाती हैं]

श्रील जीवगोस्वामिपादने भी भक्तिसन्दर्भ (२३७ परिच्छेद) में लिखा है—"यद्यपि एकमात्र शरणापत्तिके द्वारा सर्वसिद्धि होती है, तथापि भगवद्भजनरस पानके लिए विशेष इच्छुक व्यक्ति समर्थ रहनेपर भगवत्–शास्त्रोंका उपदेश करनेवाले शिक्षागुरु अथवा भगवन्मन्त्रके उपदेशक दीक्षागुरुकी विशेष रूपसे नित्य सेवा करेंगे। इसका कारण है कि बहुत चेष्टा करनेपर भी जिन अनर्थोंसे

छुटकारा प्राप्त नहीं होता, उन अनर्थोंको विनष्ट करने और श्रीभगवान्‌को सुप्रसन्न करनेके विषयमें गुरुकी प्रसन्नता ही मूल कारण है। इसलिए भगवद्भक्तिके साधन और उसका फल अर्थात् समस्त अनर्थोंकी निवृत्तिपूर्वक भगवत्–प्रेम और भगवान्‌की सेवाकी प्राप्तिके विषयमें गुरुकी प्रसन्नता ही मूल कारण है।" इन सब वचनोंमें विश्वास और निष्ठा स्थापनपूर्वक श्रीगुरुदेवकी सेवा करनी चाहिए।

यद्यपि मेरे गुरुदेवमें असंख्य अप्राकृत गुणसमूह विद्यमान थे, तब भी उनका अतिअद्भुत और सर्वश्रेष्ठ गुण था—उनकी गुरु निष्ठा। उनमें अपने गुरुदेव श्रील प्रभुपादके प्रति अगाध निष्ठा, दृढ़ श्रद्धा एवं भक्ति थी। गुरु–निष्ठा हरि–भजनका मेरु–दण्ड (रीढ़) है। गुरु–निष्ठाके बिना कोई भी हरिभजन नहीं कर सकता। मेरे गुरुपादपद्म अपने गुरुदेव श्रील प्रभुपादके लिए तत्क्षण प्राण–त्याग करनेके लिए भी सर्वदा तत्पर रहते थे। अपने गुरुके लिए अपने जीवनको भी दाँवपर लगा देनेवाले सत्–शिष्योंके उदाहरण वास्तवमें अत्यन्त दुर्लभ हैं।

जिस प्रकार श्रील रूप गोस्वामीने श्रीमन्महाप्रभुके मनोऽभीष्टको इस जगत्‌में स्थापन किया था, उसी प्रकार मेरे गुरु महाराजने भी श्रील प्रभुपादजीके मनोऽभीष्टको सम्पूर्णरूपसे स्थापन किया था।

शारदीय–रास

श्रीकृष्णकी लीलाओंकी चूड़ामणि अर्थात् रासलीला भी इसी शरद पूर्णिमाको ही आरम्भ हुई थी। श्रीकृष्णकी समस्त लीलाओंमें यह सर्वाधिक महत्वपूर्ण एवं श्रेष्ठ लीला है। कार्तिक–मासके प्रथम दिनमें ही श्रीकृष्णने वृन्दावनके वंशीवटके तटमें अगणित गोपियोंके साथ शारदीय रास आरम्भ किया था।

जैसा कि श्रीमद्भागवतम्‌में कहा गया है—

भगवानपि ता रात्रिः
शारदोत्फुल्लमल्लिकाः।
वीक्ष्य रन्तुं मनश्चक्रे
योगमायामुपाश्रितः॥

(श्रीमद्भा॰ १०/२९/१)

अर्थात् श्रीशुकदेव गोस्वामीने कहा—षड़ैश्वर्यसे परिपूर्ण होनेपर भी भगवान् श्रीकृष्णने (वस्त्रहरणके समयमें गोपियोंको जिन रात्रियोंका सङ्केत किया था, वे सभी रात्रियाँ एकत्रित होकर जिस एक ही दिव्य रात्रिके रूपमें सुशोभित हो रही थीं—) उस शारदीय रात्रि और विकसित मल्लिका पुष्पोंकी अपूर्व शोभाको देखकर अपनी प्यारी गोपियोंकी इच्छाको पूर्ण करनेके लिए अपनी शक्ति योगमायाका आश्रयकर रसमयी रासक्रीड़ा करनेकी इच्छा की।

यद्यपि श्रीकृष्ण भगवान्, आत्माराम और आप्तकाम हैं, फिर भी वे इस कार्तिक–मासमें श्रीवृन्दावनकी शोभाको देखकर गोपियोंके साथ रासलीला करनेके लिये प्रेरित हुए।

दृष्ट्वा कुमुद्वन्तमखण्डमण्डलं
रमाननाभं नवकुङ्कुमारुणम्।
वनञ्च तत्कोमलगोभिरञ्जितं
जगौ कलं वामदृशां मनोहरम्॥

(श्रीमद्भा॰ १०/२९/३)

अर्थात्, नवीन कुङ्कुमके समान अरुणवर्णके रङ्गसे रञ्जित, लक्ष्मीदेवीके मुखमण्डलकी भाँति शोभा धारण करनेवाले, कुमुद पुष्पोंको विकसित करनेवाले, अखण्डमण्डल (सोलह कलाओंसे पूर्ण) उस चन्द्रको तथा उनकी कोमल–कोमल किरणोंसे सुशोभित वृन्दावनकी अपूर्व शोभाको देखकर श्रीकृष्णने बाँसुरीपर सुनयना व्रजसुन्दरियोंके मनको मोहित करनेवाली कामबीज 'क्लीं' की अस्पष्ट एवं मधुर तान छेड़ दी।

श्रीकृष्ण वंशीवादन करने लगे और उसी वंशीकी ध्वनिने व्रजगोपियोंके हृदयमें प्रवेश किया। गोपियाँ मुग्ध हो गयीं और सबकुछ भूलकर श्रीकृष्णसे मिलनेके लिये वनकी ओर दौड़ पड़ीं।

इसी कार्तिक–मासमें ही गोपियोंने श्रीमती राधिकाके चरणचिह्नका दर्शन किया था।

अनयाराधितो नूनं भगवान् हरिरीश्वरः।
यन्नो विहाय गोविन्दः प्रीतो यामनयद् रहः॥

(श्रीमद्भा॰ १०/३०/२८)

अर्थात् इस भाग्यवती रमणीने निश्चय ही भगवान् श्रीहरिकी यथार्थ रूपमें आराधनाकर उन्हें विशेषरूपसे सन्तुष्ट किया है, अन्यथा हम सबको त्यागकर हमारे प्राण–प्रियतम श्रीगोविन्द केवल अकेली उसे निर्जन स्थानपर क्यों ले जाते?

"हम सबको त्यागकर श्रीकृष्णने जिस गोपीके साथ इस वनमें प्रवेश किया है, वही गोपी हम सबसे अधिक सौभाग्यशाली है"—ऐसा कहकर सभी गोपियोंने श्रीमती राधाजीको सम्मान प्रदान किया था।

इसी कार्तिक–मासमें ही गोपियोंने क्रन्दन करते हुए विरहमें गीत गाया था, जो 'गोपी–गीत' के नामसे विख्यात है।

तव कथामृतं तप्तजीवनं
कविभिरीड़ितं कल्मषापहम्।
श्रवणमङ्गलं श्रीमदाततं
भुवि गृणन्ति ते भूरिदा जनाः॥

(श्रीमद्भा॰ १०/३१/९)

अर्थात्, तुम्हारा कथारूप अमृत तुम्हारे विरहसे कातर लोगोंके लिए जीवनस्वरूप है। विज्ञ व्यक्ति अर्थात् (ब्रह्मा, शिव, चतुःसन आदि) कविगण भी उसकी स्तुति किया करते हैं। तुम्हारी कथा प्रारब्ध और अप्रारब्ध पापोंका नाश करनेवाली, श्रवणमात्रसे ही मङ्गल प्रदान करनेवाली, प्रेमरूपी सम्पत्तिको प्रदान करनेवाली तथा कीर्त्तन करनेवालेके द्वारा विस्तारित होती है। अतएव जो व्यक्ति इस संसारमें तुम्हारी लीलाकथाका कीर्त्तन करता है, वही सर्वश्रेष्ठ दाता है।

इसी कार्तिक–मासमें श्रीकृष्णने व्रजगोपियोंको कहा था—

न पारयेऽहं निरवद्यसंयुजां
स्वसाधुकृत्यं विबुधायुषापि वः।
या माभजन् दुर्जरगेह–शृंखलाः
संवृश्च्य तद्वः प्रतियातु साधुना॥

(श्रीमद्भा॰ १०/३२/२२)

अर्थात्, हे प्यारी गोपियो! मेरे साथ तुम्हारा मिलन सर्वथा निर्दोष और निर्मल—निजसुखकी कामनाके लेशसे भी रहित विशुद्ध प्रेममय है। तुमने घर–गृहस्थीकी दुष्कर बेड़ियोंको तोड़कर तथा

लोक–मर्यादाका उल्लङ्घनकर मेरा भजन किया है। मैं देवताओं जैसी लम्बी आयु प्राप्त करके भी तुम्हारे इस प्रेम, त्याग और सेवाका बिन्दुमात्र भी बदला चुकानेमें असमर्थ हूँ। तुम अपने सौम्य–स्वभावसे ही मुझे उऋण कर सकती हो, किन्तु मैं तो तुम्हारे प्रेमका सदा ऋणी ही हूँ और रहूँगा।

श्रीराधाकुण्ड और श्याम–कुण्डका आविर्भाव एवं स्वरूपतः सभी तीर्थोंका व्रजमें ही निवास

इसी कार्तिक–मासकी कृष्णाष्टमीके दिन श्रीकृष्णने अरिष्टासुरका वध किया था, जिसे उपलक्ष्य करके इसी तिथिकी अर्धरात्रिके समय श्रीराधाकुण्ड और श्रीश्यामकुण्ड इस जगत्में आविर्भूत हुए थे। तभीसे यह तिथि बहुलाष्टमीके नामसे प्रसिद्ध है।

श्रीकृष्ण द्वारा अरिष्टासुरके वधके उपरान्त रात्रिमें श्रीमती राधिकाने श्रीकृष्णसे कहा—"आज तुमने एक वृष (साँढ़) की हत्या की है, जिससे तुम्हें गोहत्याका पाप लगा है, अतः मेरे पवित्र अङ्गोंका स्पर्श मत करो।" किन्तु श्रीकृष्णने उत्तर दिया—"प्रियतमे! मैंने एक वृषका वेश धारण करनेवाले असुरका वध किया है। अतः मुझे पाप कैसे स्पर्श कर सकता है?" श्रीराधाजीने कहा—"जैसा भी हो, तुमने वृषके रूपमें ही उसे मारा है। अतः गोहत्याका पाप अवश्य ही तुम्हें स्पर्श कर रहा है।" प्रायश्चित्तका उपाय पूछनेपर श्रीराधाजीने भूमण्डलके समस्त तीर्थोंमें स्नानको ही प्रायश्चित्त बतलाया। ऐसा सुनकर श्रीकृष्णने अपनी एड़ीकी चोटसे एक विशाल कुण्डका निर्माण कर उसमें भूमण्डलके समस्त तीर्थोंका आह्वान किया। साथ–ही–साथ

असंख्य तीर्थ अपना–अपना रूप धारणकर वहाँ अपस्थित हुए। कृष्णने उन्हें जलरूपसे उस कुण्डमें प्रवेश करनेको कहा। तत्पश्चात् श्रीकृष्ण उस कुण्डमें स्नानकर जब श्रीमतीजो को पुनः स्पर्श करनेके लिये अग्रसर हुए, तब श्रीमती राधिकाने कहा—"हम कैसे विश्वास करें कि इस कुण्डमें स्नान करनेमात्रसे भूमण्डलके समस्त तीर्थोंमें तुमने स्नान कर लिया है।" ऐसा सुनकर श्रीकृष्णने सभी तीर्थोंके अधिष्ठात्री देवताओंको प्रत्यक्षरूपसे व्रजगापियोंके समक्ष उपस्थित होकर प्रमाण प्रस्तुत करेनेके लिये कहा। श्रीकृष्णकी आज्ञासे सभी तीर्थोंके अधिष्ठात्री देवताओंने व्रजरमणियोंके समक्ष उपस्थित होकर कहा—"हे देवियो! हम दूरमें नहीं, बल्कि यहीं पर निवास करते हैं। यह श्रीव्रजमण्डल सर्वतीर्थमय है। व्रजकी सेवा करनेके लिये ही हम सभी यहाँ पर वास करते हैं। यद्यपि हमारे स्वरूपका प्रकाश अन्य–अन्य स्थानोंपर भी है, तथापि हम स्वयं नित्य इसी स्थानपर निवास करते हैं।" इस प्रकार व्रजरमणियोंको कृष्णकी बातपर सम्पूर्ण विश्वास हो गया।

इस प्रसङ्गसे हमें यह ज्ञात होता है कि उस बहुलाष्टमीके दिन ही श्रीकृष्णकी इच्छासे यह प्रमाणित हुआ था कि सभी तीर्थस्थल अपने वास्तविक स्वरूपमें व्रजमें ही वास करते हैं तथा जगत्वासियोंके मङ्गलके उद्देश्यसे ही अन्यान्य स्थानोंपर अपने प्रकाशके रूपमें विराजमान हैं।

प्रपूज्यचरण श्रीश्रीमद्भक्तिरक्षक श्रीधर गोस्वामी महाराजजीकी आविर्भाव–तिथि

मेरे परमाराध्य शिक्षा गुरुदेव प्रपूज्यचरण श्रीमद्भक्तिरक्षक श्रीधर गोस्वामी महाराज कार्तिक मासकी कृष्ण नवमीको उपलक्ष्य करके इस जगत्में आविर्भूत हुए थे।

मैंने प्रपूज्यचरण श्रील श्रीधर महाराजजीका सर्वप्रथम दर्शन १९४६ ई० में किया था। प्रपूज्यचरण श्रील श्रीधर महाराजजी हमारे गुरुदेव नित्यलीलाप्रविष्ट श्रीश्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराजजीकी भाँति एक श्रेष्ठ दार्शनिक थे।

प्रतिवर्ष मैं अपने गुरु महाराजजीके साथ प्रपूज्यचरण श्रील श्रीधर महाराजजीके दर्शनोंके लिए नवद्वीप स्थित उनके मठमें जाता था और मैंने बहुत बार प्रत्यक्ष देखा कि इन दोनों गुरु भाईयोंका परस्परमें कितना स्नेह था। दोनों ही परस्परको आदर–सम्मान देते थे। भले ही कोई भक्त वृद्ध हो अथवा युवक, यदि वे देखते कि यह भक्त निष्कपट हैं, तो वे उन्हें यथोचित सम्मान देते थे। इन दोनों गुरुभाईयोंके इस आदर्शको देखकर मैंने भी यथासम्भव ऐसे आदर्शको अपने जीवनमें सदैव पालन करनेका प्रयास किया है।

श्रील भक्तिरक्षक श्रीधर महाराजजी द्वारा रचित 'सुजनार्बुदराधितपादयुगम्, युगधर्मधुरन्धरपात्रवरम्' नामक 'श्रीप्रभुपादपद्म स्तवकः' अनेक अलङ्कारोंसे विभूषित और अत्यधिक सुन्दर है। इसके अतिरिक्त भी उन्होंने अनेक संस्कृतके कीर्त्तन तथा स्तवोंकी रचना की हैं।

उनके द्वारा रचित 'प्रेमधामदेव स्तोत्रम्' श्रीचैतन्य महाप्रभकी प्रायः सभी लीलाओंको अपनेमें समेटे हुए है। वह एक अद्भुत और चमत्कार पूर्ण रचना है, जिसकी कोई तुलना नहीं है। केवल हमारे षड् गोस्वामी, श्रील विश्वनाथ चक्रवर्तीपाद जैसे परम रसिक भक्त ही इस प्रकारकी रचना कर सकते हैं।

प्रपूज्यचरण श्रील श्रीधर महाराजजीकी श्रील गुरु महाराज तथा श्रील भक्तिवेदान्त स्वामी महाराजजीके साथ परम मित्रता थी। प्रपूज्यचरण श्रील श्रीधर महाराज कितने श्रेष्ठ होंगे कि श्रील भक्तिवेदान्त स्वामी महाराजजी जैसे विश्व प्रचारक भी उन्हें अपने शिक्षा गुरुके रूपमें स्वीकार करके गर्वका अनुभव करते थे।

दीपावली

इसी कार्तिक–मासकी अमावस्या तिथिको सम्पूर्ण विश्वमें दीपावलीका उत्सव अत्यधिक धूमधामसे मनाया जाता है।

भगवान् वामनदेवने जब बलि महाराजसे तीन पग भूमिके छलसे उनका सबकुछ हरण कर लिया, तब ऐसा प्रतीत हो रहा था कि उन्होंने बलि महाराजके साथ बहुत बड़ा छल किया है, किन्तु वास्तवमें वह छल नहीं, बल्कि उनकी बलि महाराजके प्रति परम करुणा ही थी। जब श्रीवामनदेवने बलि महाराजसे सन्तुष्ट होकर उन्हें वर माँगनेके लिये कहा तब श्रीबलि महाराजने यह वर माँगा—"आप सदैव मेरे घरमें ही वास करें।" श्रीवामनदेवने बलि महाराजकी इच्छाको पूर्ण करते हुए उनके घरमें निवास करना स्वीकार कर लिया। श्रीवामनदेवकी स्वीकृतिसे परमानन्दित होकर श्रीबलि महाराजने अपने सगे–सम्बन्धियोंके साथ मिलकर दीप–माला तथा आतिशबाजी आदिके द्वारा दीपावली मनायी थी। स्कन्ध–पुराणके आधारपर यही प्रथम दीपावली है तथा यह घटना कार्तिक अमावस्याके दिन ही हुई थी।

जब भगवान् श्रीरामचन्द्र रावणका संहार करके अयोध्या लौटे थे तब अयोध्या नगरीको नयी दुल्हनकी भाँति सजाकर वहाँपर भी दीपावली मनायी गयी थी, किन्तु वह दीपावली चैत्र मास[१] में मनायी गयी थी।

स्वयं श्रीकृष्णने माता यशोदा, श्रीनन्द बाबा तथा अन्यान्य सभी व्रजवसियोंके साथ गोवर्धनके मानसी–गङ्गाके तटपर आकर दीपावलीका उत्सव मनाया था। इसी कारण हम भी सभी भक्तोंके साथ मानसी गङ्गाके तटोंपर दीपमाला प्रदान करके इस उत्सवको मनाते हैं।

१ शास्त्र प्रमाण और श्रील गुरुदेवके वचनरूपी प्रमाणके अनुसार भगवान् श्रीरामचन्द्रने विजयादशमीके दिन लङ्काकी ओर प्रस्थान किया और चैत्र मासकी नवमी तिथि अर्थात् उनके जन्मदिनपर ही अयोध्यामें चक्रवर्तीके रूपमें वे अभिषिक्त हुए थे। इसीलिए रावण वध और लङ्कासे अयोध्या लौटना चैत्र मासमें ही हुआ था।

महाभारत युद्धके उपरान्त जब श्रीकृष्ण द्वारका लौटकर गये थे, तब वहाँ पर भी उनके स्वागतमें दीपावलीका उत्सव मनाया गया था।

दीपावलीका अर्थ है प्रकाश। 'तमसो मा ज्योतिर्गमय' अर्थात् अन्धकारसे प्रकाशकी ओर चलो। श्रीकृष्णका भजन करनेपर ही हम अन्धकारसे निकलकर प्रकाशकी ओर जा सकते हैं। इस दिन हम गिरिराज गोवर्धनसे यही प्रार्थना करते हैं कि वे हमें अन्धकारसे निकलकर प्रकाशमें प्रवेश करनेकी शक्ति प्रदान करें।

दीपावलीका एक अर्थ आनन्द भी है तथा वह अप्राकृत आनन्द केवल करताल और मृदङ्गके माध्यमसे किये जानेवाले कीर्त्तनसे ही प्राप्त हो सकता है, क्योंकि कीर्त्तनकी ध्वनिके श्रवणसे माया तत्क्षणात् भाग जाती है तथा अनायास ही आनन्द ही आनन्द आकर उपस्थित हो जाता है। श्रीचैतन्य महाप्रभुके अनुगत होनेके कारण हम प्रत्येक उत्सवका ही सङ्कीर्त्तनके माध्यमसे पालन करके स्वयंको कृतकृतार्थ मानते हैं।

दाम-बन्धन एवं अन्नकूट-महोत्सव

कार्तिक-मासकी शुक्ल प्रतिपदाके दिन मैया यशोदाने कृष्णको ऊँखलसे बाँधा था। जिन परब्रह्मको आज तक कोई बाँध नहीं सका, उन परब्रह्म श्रीकृष्णको माँ यशोदाने इसी मासमें प्रेमकी रज्जूसे बाँधा था।

इसी मासमें गाँठोली नामक ग्राममें सखियोंने नटखट श्रीकृष्णको श्रीराधाजीके साथ बाँध दिया था, इसलिए उन्हें दामोदर कहते हैं।

श्रीकृष्ण सामान्य रस्सीके द्वारा नहीं बाँधे गये, किन्तु प्रेमके द्वारा अर्थात् शुद्ध-वात्सल्य प्रेमके द्वारा बँधे गये थे। श्रीकृष्ण अनादि हैं अर्थात् उनका कोई आदि नहीं है। वे अनन्त हैं अर्थात् उनका कोई अन्त नहीं है। परब्रह्म, अनन्त, अनादि, असीम, भगवान् होनेपर भी श्रीकृष्णको प्रेम द्वारा बाँधा और वशीभूत किया जा सकता है।

यद्यपि इस दिन श्रीकृष्ण स्वयं ऊँखलसे बँधे हुए थे, किन्तु ऐसी अवस्थामें भी उन्होंने अपने भक्त नारदजीके द्वारा शापित तथा उन्हींके वचनोंकी सत्यताको प्रतिपादित करकेके उद्देश्यसे यमलार्जुन नामक वृक्षका रूप धारण करनेवाले नलकूबर और मणिग्रीवको मुक्ति अर्थात् प्रेमभक्ति प्रदान की थी। श्रीकृष्णने केवल उनका उद्धार ही नहीं, बल्कि उन दोनोंको अपने गोलोक धाममें स्थित व्रजराजकी सभामें मधुकण्ठ और स्निग्धकण्ठ नामक गायकका नित्यस्वरूप भी प्रदान किया था।

श्रीकृष्ण द्वारा प्रदर्शित आदर्श

अमावस्याके बाद आनेवाली प्रतिपदाके दिन श्रीकृष्णने समस्त व्रजवासियों सहित प्रातःकाल सर्वप्रथम श्रीगुरु, फिर गाय, ब्राह्मण, वैष्णवकी क्रमशः पूजा-सम्मान करनेके बाद ही समस्त भोग सामग्रियोंको श्रीगिरिराजके लिए समर्पण पूर्वक अन्नकूट महोत्सवका अनुष्ठान किया था। इसीलिए अन्नकूट मात्रका अनुष्ठान करनेसे नहीं, बल्कि श्रीकृष्णके द्वारा प्रदर्शित आदर्शका

पुंखानुपुंख पालन करनेसे ही श्रीगिरिराज गोवर्धन प्रसन्न होते हैं।

श्रीकृष्ण द्वारा गिरिराजजीकी परिक्रमाका प्रवर्त्तन

अन्नकूट–महोत्सवके समय व्रजवासियोंके द्वारा समस्त भोग श्रीगिरिराज गोवर्धनको समर्पित किये गये। गिरिराजजीको सन्तुष्ट करनेके उपरान्त श्रीकृष्णने समस्त व्रजवासियोंके साथ गिरिराज गोवर्धनकी परिक्रमा लगायी। इस प्रकार गिरिरजजीकी परिक्रमाका भी शुभारम्भ स्वयं श्रीकृष्ण द्वारा इसी तिथिको ही किया गया था। अत्यन्त सौभाग्यशाली व्यक्ति आज तक भी गुरु–वैष्णवोंके आनुगत्यमें श्रीकृष्ण द्वारा प्रदर्शित इस आदर्शका पालन करते हैं। हमलोग लाखों–लाखों ज्ञानियों, कर्मियों इत्यादिकी भाँति श्रीगिरिराज गोवर्धनकी परिक्रमा नहीं करते, बल्कि हम गोपियों द्वारा कथित 'हरिदासवर्य अर्थात् हरिके दासोंमें श्रेष्ठ'–गिरिराज गोवर्धनरूपी साधु–सङ्गकी प्राप्तिकी लालसासे कृष्ण–सेवाकी वासनाका Injection लगवानेके लिये ही परिक्रमा करते हैं। यही हमारे द्वारा की जानेवाली गिरिराज परिक्रमाका वास्तविक उद्देश्य है।

श्रीकृष्ण द्वारा शुक्ला तृतीयासे नवमी तक गिरिराजको धारण करना

इन्द्रने जब देखा कि व्रजवासियोंने न तो उन्हें कोई भोग निवेदन किया और न ही कोई सम्मान प्रदर्शित किया, तब वह व्रजवासियोंके प्रति क्रोधित हो गया तथा उसने मूसलाधार वर्षा करनेवाले मेघोंको आदेश दिया कि जाकर सम्पूर्ण व्रजको जलमग्न कर दो। उसके आदेशसे शुक्ल तृतीयाके दिनसे आरम्भ करके शुक्ल नवमी तिथि तक उन्होंने व्रजमण्डलमें सर्वत्र मूसलाधार वर्षा की। उस समय श्रीकृष्णने समस्त व्रजवासियोंकी रक्षा हेतु, इन्द्रके गर्वका दमन करने तथा समस्त व्रजवासियोंको अपने निकट–सङ्गका सुख प्रदान करने, विशेषतः गिरिराज गोवर्धनको अपना स्पर्श सुख प्रदान करनेके उद्देश्यसे तृतीयासे नवमी तक अर्थात् सात दिन तक श्रीगिरिराज गोवर्धनको धारण

किया था। इन सात दिनोंतक श्रीकृष्णने श्रीगिरिराजजीको अपनी कनिष्ठ अङ्गुलिपर बिना हिले–डुले धारण किया। उस समय समस्त व्रजवासी और विशेषतः पूर्वरागवती गोपियोंको श्रीकृष्णके अत्यन्त निकट आनेका सुयोग मिला और वास्तवमें उन गोपियोंने ही श्रीगिरिराजजीको अपने कटाक्षसे धारण किया।

गोविन्द–कुण्डका आविर्भाव

जब इन्द्रने देखा कि व्रजका नाश नहीं हो पा रहा है, तो वह बहुत विचलित और भयभीत हो गया। उस समय इन्द्रने श्रीकृष्णकी यथार्थ भगवत्ताका अनुभव करके सुरभि गायका आश्रय ग्रहण किया तथा अपने ऐरावत नामक हाथीकी सहायतासे आकाश गङ्गाके जलको संग्रह किया और फिर एकादशी तिथिमें स्वयं इन्द्रने आकर श्रीकृष्णकी स्तव–स्तुतिकी तथा श्रीकृष्णका अभिषेक किया। उसी दिन ही इन्द्रके मुखसे श्रीकृष्णके 'गोविन्द' नामका तथा इन्द्र द्वारा किये गये श्रीकृष्णके चरणकमलोंके अभिषेकके जलसे 'गोविन्द–कुण्ड' का आविर्भाव हुआ।

श्रीगिरिराज–आश्रयस्वरूप और विषय-स्वरूप

मैं आप सभीको श्रीगिरिराजजीके सम्बन्धमें एक रहस्य बतलाना चाहता हूँ। गिरिराज श्रीश्रीराधाकृष्णकी प्रमद–मदन–लीलाओंके साक्षी हैं, इसलिए वे पुरुष नहीं हो सकते, क्योंकि किसी भी पुरुषको श्रीराधाकृष्णकी निगूढ़ लीलाओंके दर्शन करनेका अधिकार नहीं है। शंकरजी भी पुरुष रूपमें श्रीराधाकृष्णकी रासलीलाका दर्शन नहीं कर पाये थे। वास्तवमें गिरिराजजी राधाजीके मनसे प्रकट हुए हैं, इसलिए वे पुरुष नहीं है। गिरिराज गोवर्धन आश्रयस्वरूप और विषयस्वरूप दोनों ही हैं।

यम-द्वितीया

कार्तिक-मासकी शुक्ल द्वितीयाको यम-द्वितीया भी कहते हैं। इसी दिन यमुनाजीने अपने भाई यमराजजीको प्रीतिपूर्वक भोजन बनाकर खिलाया था। जो भी व्यक्ति इस दिन प्रीतिपूर्वक अपनी बहनके साथ यमुनामें स्नान करता है तथा उसके हाथका बना भोजन प्रीतिपूर्वक ग्रहण करता है, यमुनाके भैया यमराज कभी भी उसे स्पर्श नहीं करते। बल्कि वे आशीर्वाद स्वरूप उनके मनकी कामनाकी पूर्ति कर देते हैं।

श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त वामन गोस्वामी महाराजकी तिरोभाव-तिथि

कार्तिक मासकी जिस शुक्ला तृतीया तिथिमें दो वर्ष पूर्व पूज्यपाद त्रिविक्रम महाराजजीने नित्यलीलामें प्रवेश किया था, उसी तिथिमें प्रपूज्यचरण भक्तिवेदान्त वामन महाराजने भी अर्धरात्रिमें श्रीकृष्णकी नैश-लीलामें प्रवेश किया है।

प्रपूज्यचरण वामन महाराज मेरे गुरुदेव श्रील भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराजजीके श्रेष्ठ सेवक थे। उन्होंने अपने बाल्यकालसे ही श्रील गुरुदेवकी विभिन्न प्रकारकी सेवाएँ की थीं। जब वे प्रायः दस वर्षके थे, तभी उनकी माँ उन्हें हमारे श्रीगुरुदेवके चरणोंमें समर्पित कर गयी थी और तभीसे ही प्रपूज्यचरण वामन महाराज हमारे गुरुदेवको ही अपनी माँ, पिता, गुरु और अपना सर्वस्व समझते थे।

पूज्यपाद वामन महाराज श्रील प्रभुपादके समयमें मठमें आये थे और श्रील प्रभुपादने उन्हें हरिनाम प्रदान किया था, किन्तु वे सब समय हमारे गुरुदेवको ही गुरु मानते थे, क्योंकि उन्होंने ही उनका पालन-पोषण किया था तथा उन्हें अपना आश्रय प्रदान किया था।

जब मैं अपने गृहस्थ आश्रमको त्यागकर श्रीनवद्वीप धाम रेलवे-स्टेशनपर पहुँचा, तब अर्ध-रात्रिका समय था। मैंने किसीको भी अपने नवद्वीप आनेकी सूचना नहीं दी थी। किन्तु वहाँपर सज्जनसेवक ब्रह्मचारी[२] लालटेन हाथमें लेकर एक अन्य भक्तके साथ मुझे ढूँढ़ रहे थे। वे मेरे पास आये और मुझसे पूछा—क्या आप तिवारीजी हैं? मैंने

[२] श्रील वामन गोस्वामी महाराजके ब्रह्मचारी अवस्थाका नाम

उत्तर दिया, हाँ। उन्होंने कहा कि मेरे साथ चलिए! श्रील गुरुदेवने आपको मठ ले आनेके लिये ही मुझे यहाँपर भेजा है। मैंने आश्र्यचकित होते हुए उनसे पूछा कि आपको कैसे पता चला कि मैं आ रहा हूँ, मैंने तो आनेका कोई संदेश भी नहीं भेजा था। प्रपूज्यचरण वामन महाराजजीने उत्तर दिया कि मुझे इस विषयमें कोई जानकारी नहीं है, मुझे तो श्रील गुरु महाराजजीने यहाँ भेजा है।

अपनी पूजा–प्रतिष्ठामें पूज्यपाद वामन महाराजकी लेशमात्र भी रुचि नहीं थी। वे न तो कभी अपनी प्रशंसा करते थे और न ही सुनते थे। अपने द्वारा सम्पन्न की गयी सेवाओंका कभी भी अपने मुखसे वर्णन नहीं करते थे। मैं उनसे बहुत छोटा तथा उनके शिक्षा–शिष्यके समान हूँ, तब भी वे मुझे बहुत आदर–सम्मान देते थे।

हरिकथाके समय पूज्यपाद वामन महाराजजी मुझे पहले बोलनेके लिये कहा करते थे। मैं बहुत बार उनसे अनुरोध करता था कि आप पहले वक्तृता दें। किन्तु वे उत्तर देते कि नहीं, आप ही पहले वक्तृता देंगे। इस प्रकार मैं प्रायः सब समय उनसे पराजित होता और मुझे ही पहले वक्तृता देनी पड़ती थी। वास्तवमें वे वैष्णव–आचरणके आदर्श स्वरूप थे।

पूज्यपाद वामन महाराज श्रील गुरुदेवके दाहिने हस्त स्वरूप थे। पूज्यपाद वामन महाराज, पूज्यपाद त्रिविक्रम महाराज और मैं–हम तीनों प्रारम्भसे ही मठके सम्पूर्ण सेवाभारका दायित्व अपने कंधोंपर लेते थे। जो कुछ भी करना होता था, हम तीनों एक साथ मिलकर करते थे।

श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त त्रिविक्रम गोस्वामी महाराजजीकी तिरोभाव–तिथि

जब मैं सर्वप्रथम मठमें आया था, तबसे ही पूज्यपाद त्रिविक्रम महाराजजी मेरे प्रति बन्धुवत् स्नेह प्रदर्शित किया करते थे। हम प्रायः एक साथ ही रहते थे तथा सिद्धान्तोंकी चर्चा करते–करते कभी–कभी झगडते थे। मेरे गुरु महाराजने मुझे उनके हाथोंमें सौंप दिया था और इसी कारण हमारे घनिष्ट सम्बन्ध थे। पूज्यपाद त्रिविक्रम महाराजने ही मुझे कीर्त्तन करना, प्रचार करना और भिक्षा करना सिखलाया था। कभी–कभी वे मुझे अत्यन्त प्रेमपूर्वक डाँटते भी थे। श्रील गुरु महाराजने मुझे कभी भी नहीं डाँटा था, किन्तु पूज्यपाद त्रिविक्रम महाराज मुझे प्रेमसे डाँटा करते थे।

यद्यपि श्रील गुरु महाराजजीने नित्यलीलामें प्रविष्ट होनेके बाद भी आन्तरिक रूपसे हमारी देखभाल और हमें उत्साह प्रदान किया, तथापि बाहरी रूपसे पूज्यपाद त्रिविक्रम महाराजजीने मेरे गुरु महाराजजीका स्थान प्राप्त किया अर्थात् वे मुझे प्रत्येक सेवाकार्य करनेमें उत्साह प्रदान करते थे। जब मैं पाश्चात्य देशोंमें प्रचार करने और ग्रन्थ–प्रणयन इत्यादि सेवाकार्य करनेमें तत्पर रहता था, तब मैं पूज्यपाद वामन

महाराज, पूज्यपाद त्रिविक्रम महाराज और अन्यान्य श्रेष्ठ वैष्णवोंसे परामर्श प्राप्ति हेतु पत्र लिखता था। पूज्यपाद त्रिविक्रम महाराजजी बिना किसी विलम्बके मेरे पत्रोंका उत्तर देते थे। वे मुझे और अधिक ग्रन्थोंका प्रणयन करने और विदेशोंमें सर्वत्र प्रचार करनेके लिए उत्साह प्रदान करते थे। मैं उन्हें कभी भूल नहीं सकता हूँ। मैं पूज्यपाद भक्तिवेदान्त वामन महाराज और पूज्यपाद त्रिविक्रम महाराज—इन दोनोंको अपना शिक्षा गुरु मानता हूँ। इन दोनोंने श्रील गुरु महाराजजीके विचारोंको समझनेमें मेरी जो सहायता की, मेरा जो पारमार्थिक पालन–पोषण किया है तथा सेवाकार्यों हेतु मुझे जो प्रेरणा प्रदान की है, मैं शब्दोंके द्वारा उसका वर्णन नहीं कर सकता।

यद्यपि मैं उन्हें शिक्षा गुरुके रूपमें सम्मान प्रदान करता था, किन्तु वे भी अपने अन्तिम समय तक मुझे साष्टाङ्ग प्रणाम किया करते थे। मेरी अनुपस्थितिमें मेरी पादुका तकको भी प्रणाम करते थे।

'तृणादपि सुनीचता' की प्रतिमूर्ति पूज्यपाद त्रिविक्रम महाराजजीके अतिरिक्त और कौन ऐसा कर सकता है? वास्तवमें जो जितना उन्नत होता है, वह उतना ही अधिक विनम्र और शिष्ट होता है। पूज्यपाद त्रिविक्रम महाराज स्वयं इतने श्रेष्ठ भक्त थे कि सम्पूर्ण विश्वासियोंकी सहायता कर सकते थे, तथापि वे मुझे लिखते थे—"आप गुरु–गौराङ्गकी जिस प्रकारसे सेवा कर रहे हैं, हम वैसी सेवा किसी भी जन्ममें नहीं कर सकते। मैं सदैव आपकी सेवा–प्रवृत्तिको देखकर बहुत प्रभावित होता हूँ। आप बहुत लम्बे समय तक प्रचार करें, अनेकानेक ग्रन्थोंका लेखन और प्रकाशन करें, यही मेरी गुरुदेवके श्रीचरणोंमें प्रार्थना है।"

श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त स्वामी महाराजजीकी तिरोभाव–तिथि

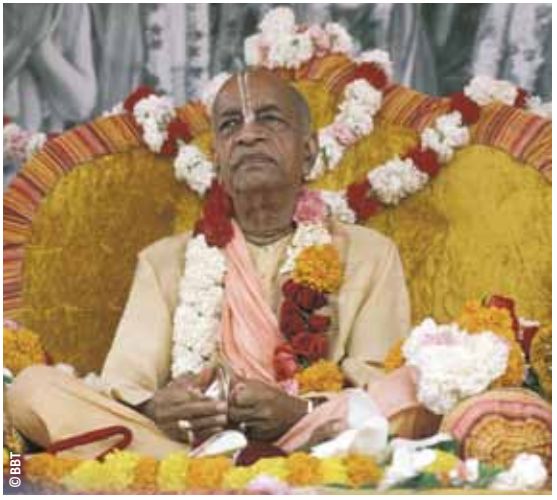

कार्तिक–मासकी शुक्ला–चतुर्थीका दिन विश्वविख्यात श्रील भक्तिवेदान्त स्वामी महाराजजीका तिरोभाव–दिवस है।

"श्रील भक्तिवेदान्त स्वामी महाराज मेरे शिक्षागुरु एवं प्रिय बन्धु हैं। उनका मेरे प्रति निर्देश था कि मैं उनके शिष्योंको भजनपथ प्रदर्शन करूँ, इसलिए आज मैं उनकी उसी निर्देशका पालन कर रहा हूँ।''

श्रील भक्तिवेदान्त स्वामी महाराजजीके प्रणाम–मन्त्रमें 'गौरवाणी' शब्द आता है, उसका अर्थ क्या है? गौरवाणी अर्थात् श्रीचैतन्य महाप्रभुकी वाणी। वे गौरवाणी प्रचार करनेके कारण रूपानुग थे, क्योंकि श्रील रूप गोस्वामीने ही श्रीचैतन्य महाप्रभुकी वाणी अर्थात् श्रीचैतन्य महाप्रभु जगत्को जो देना चाहते थे, उसे जगत्में प्रचार किया था। अतएव मैंने देखा और अनुभव भी किया है कि श्रील भक्तिवेदान्त स्वामी महाराज उत्तम श्रेणीके रूपानुग–वैष्णव थे। उन्होंने श्रीमद्भगवद्गीता, श्रीमद्भागवतम्, श्रीचैतन्य चरितामृत तथा अन्यान्य अनेकों ग्रन्थोंका अत्यधिक सरल अनुवाद तथा व्याख्या प्रस्तुत की है।

श्रील स्वामी महाराज इस जगत्में 'राधा–दास्यम्' प्रदान करनेके लिये ही आये थे। उन्होंने श्रील रूप गोस्वामी, श्रील सनातन गोस्वामी आदि गोस्वामियोंके विचारोंका ही जगत्में प्रचार किया है। उन्होंने षड् गोस्वामियोंकी विचारधाराको ही नयी एवं सरल–सहज शैलीमें प्रस्तुत किया है। उन्होंने ISKCON की प्रतिष्ठा की है। ISKCON का तात्पर्य क्या है? उन्होंने श्रील जीव

गोस्वामी द्वारा स्थापित विश्ववैष्णव–राजसभाको ही थोड़ेसे परिवर्तनके साथ अंग्रेज़ी भाषामें ISKCON नाम प्रदान किया है। वास्तवमें ISKCON नाम सनातन है।

श्रील स्वामी महाराज इस ISKCON के एक सदस्य हैं। जिनमें उनके जैसे गुण नहीं है, वे इस ISKCON के सदस्य नहीं हैं। मेरे शिक्षा गुरु श्रील स्वामी महाराजने हमारे पूर्वाचार्योंके विचारोंका ही प्रचार किया है।

जो हृदयसे अपने श्रील गुरुदेवके आचरण और उपदेशको पालन करते हैं, वे ही यथार्थ शिष्य होते हैं। जिन्होंने परमपूज्यपाद श्रील स्वामी महाराजजीसे बाह्य रूपसे दीक्षा तो ग्रहण की हैं, किन्तु उनके आदेश–उपदेशका पालन नहीं करते, वे यथार्थ शिष्य नहीं हैं। यही भागवत–परम्पराका विचार है।

श्रील स्वामी महाराजजीके आचार और विचारका पालन करनेकी चेष्टा करें, किन्तु उनका अनुकरण नहीं। उनके विचार, सिद्धान्त, आचरण और भावोंको आन्तरिक रूपसे समझकर उनका अनुसरण करना चाहिए।

मैं श्रील स्वामी महाराजसे प्रार्थना करता हूँ कि वे हम सबपर कृपा वर्षण करें जिससे हम सभी श्रीश्रीराधाकृष्ण और श्रीगौर–नित्यानन्द प्रभुकी सेवा कर सकें।

नित्यलीलाप्रविष्ट श्रीश्रीमद्भक्तिश्रीरूप सिद्धान्ती गोस्वामी महाराजकी आविर्भाव–तिथि

श्रीश्रीमद्भक्तिश्रीरूप सिद्धान्ती गोस्वामी महाराजजीका आविर्भाव १३१३ बङ्गाब्द कार्त्तिक शुक्ला पञ्चमी, १२ अक्टूबर सन् १९०६ ई. सोमवारको वर्त्तमान बङ्गलादेशके अर्न्तगत बरिसाल जिलेमें एक सम्पन्न और धार्मिक परिवारमें हुआ था। उनमें बचपनसे ही श्रीभगवानके नाम, रूप, गुण, लीलाके प्रति रुचि परिलक्षित होने लगी थी। उनके बचपन का नाम शिवशंकर था।

कॉलेजमें अध्ययन करते समय जगद्गुरु श्रीश्रीमद्भक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी ठाकुर प्रभुपादके अन्तरङ्ग परिकर नित्यलीलाप्रविष्ट श्रीश्रीमद्भक्तिविवेक भारती गोस्वामी महाराजके मुख निःसृत गौरवाणीको सुनकर वे बड़े ही प्रभावित हुए। तत्पश्चात् सन् १९२४ में घर–बार, माता–पिता आदि सबको छोड़कर श्रीधाम मायापुरमें फाल्गुन पूर्णिमाके

दिन श्रील सरस्वती ठाकुर प्रभुपादसे हरिनाम और वैष्णवी दीक्षा ग्रहण की। तबसे वे श्रीसिद्धस्वरूप ब्रह्मचारीके नामसे प्रसिद्ध हुए। श्रील प्रभुपादके चरणाश्रित होनेके पश्चात् उन्होंने विविध भक्तिशास्त्रोंका अध्ययन किया तथा निर्भीक कण्ठसे वैष्णवोंके आनुगत्यमें गौरवाणीका प्रचार करने लगे।

एक बार वे पूर्वी बङ्गालके मैमनसिंह जिलेके किशोरगंजमें पूज्यपाद श्रीश्रीमद्भक्तिनेमि महाराजके साथ प्रचारमें गये हुए थे। वहाँ एक विशाल सभामें उन्होंने निर्भीक कण्ठसे सत्य सिद्धान्तका प्रचार करते समय स्वामी विवेकानन्द और श्रीरवीन्द्रनाथ ठाकुरके विषयमें यह कहा कि वे कदापि भारतीय संस्कृतिके प्रचारक नहीं थे। इतना सुनते ही सभा बिगड़ गयी और सभी लोग गौड़ीय मठके विरोधी होने लगे। उसी समय उनकी प्रचारकी पार्टीके किसी एक ब्रह्मचारीने श्रीधाम मायापुरमें श्रील प्रभुपादको इस अप्रिय घटनाकी बातसे अवगत कराया। उसे सुनकर श्रील प्रभुपाद बड़े ही प्रसन्न हुए और बोले—"आज सिद्धस्वरूप ब्रह्मचारीने मेरा एक लाख रुपयेका प्रचार किया है।" और उसी समय वे मायापुर मठसे यात्रा कर अपने परिकरोंके साथ किशोरगंजमें पहुँचे। अगले कुछ दिनोंमें विराट–विराट सभाओंमें श्रीसिद्धस्वरूपके द्वारा कथित विचारोंकी शास्त्र एवं युक्तिपूर्वक स्थापना कर गौड़ीय मठके शुद्ध भक्तिके विचारोंको स्थापित किया तथा जन साधारणको अनुकूल कर लिया।

सन् १९४१ ई. विजया दशमीके दिन श्रीसिद्धस्वरूप ब्रह्मचारीने त्रिदण्ड संन्यास ग्रहण किया। तब उनका नाम श्रीमद्भक्तिश्रीरूप सिद्धान्ती महाराज हुआ।

श्रील प्रभुपादके अप्रकट लीलामें प्रवेश करनेके पश्चात् श्रीमद्भक्तिश्रीरूप सिद्धान्ती महाराज और उनके शिक्षागुरु श्रीमद्भक्तिविवेक भारती महाराजने श्रीसारस्वत गौड़ीय आसन और मिशन नामसे एक पृथक् मठकी स्थापना की। उसकी प्रथम शाखा कोलकातामें, दूसरी शाखा श्रीनवद्वीप धाममें तथा तीसरी श्रीजगन्नाथ पुरीमें स्थापित हुई। श्रील भक्तिविवेक भारती महाराजके अप्रकट लीलामें प्रवेश करनेके पश्चात् श्रील भक्तिश्रीरूपसिद्धान्ती गोस्वामी महाराज सारस्वत आसन और मिशनके सभापति और आचार्य हुए।

श्रील भक्तिश्रीरूप सिद्धान्ती महाराज बड़े ही पराविद्यानुरागी थे। इन्होंने श्रीमद्भगवद्गीताको श्रीश्रीबलदेव विद्याभूषणकी टीका सहित अपनी सरल, सहज, बोधगम्य वृत्तिके साथमें प्रकाशित किया। इन्होंने श्रील बलदेव विद्याभूषणके गोविन्द भाष्य और सूक्ष्म टीकाको स्वरचित सिद्धान्तकणा नामक अनुव्याख्याके साथ प्रकाशित किया। यह मूल–ग्रन्थ श्रीकृष्णद्वैपायन वेदव्यासके द्वारा रचित ब्रह्मसूत्र या वेदान्तसूत्र है। इन्होंने ईश, केन, कठ, श्वेताश्वतर, मुण्डक, माण्डुक्य, प्रश्न, तैत्तिरेय, ऐतरेय और गोपालतापनी आदि दस प्रधान उपनिषदोंको गौड़ीय विचार सम्मत भाषा–टीकाके साथ प्रकाशित किया। इसके अतिरिक्त इन्होंने श्रील विश्वनाथ चक्रवर्त्ती ठाकुर द्वारा रचित श्रीभागवतामृत–कणा, श्रीभक्तिरसामृतसिन्धुबिन्दु और उज्ज्वलनीलमणि–किरण आदि तीन ग्रन्थोंको भी अपनी सरल, सहज बोधगम्य अनुवृत्तिके साथ प्रकाशित किया।

अस्मदीय परमाराध्यतम गुरुदेव श्रीश्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराजके साथ उनका विशेष सम्बन्ध था। श्रीसिद्धस्वरूप ब्रह्मचारीने गौड़ीय मठमें आने पर देखा कि मठवासी सभी संन्यासी, ब्रह्मचारी बड़े–बड़े विद्वान हैं। तब वे विद्या अध्ययन करनेके लिए पुनः घर चले गये। उन्होंने विद्या अध्ययनके साथ ही साथ Law का भी विशेष रूपसे अध्ययन करने तथा कोर्टमें practice करनेका विचार किया। इसी समय श्रील विनोदबिहारी ब्रह्मचारी (संन्याससे पहले मेरे गुरुदेवका नाम) उनके विचारसे अवगत होकर उनके घर पहुँचे और कुछ दिनों तक उनके घर पर रहकर उन्हें समझा–बुझाकर पुनः मठमें लाये। मेरे गुरुदेव सदा उन्हें अपने अनुजकी भाँति प्रीति करते थे और वे भी अस्मदीय गुरुपादपद्मका बहुत ही सम्मान करते थे। श्रील गुरुदेवके अप्रकट लीलामें प्रवेश करते समय वे श्रीधाम नवद्वीपमें ही अपने मठमें

थे। श्रील गुरुदेवके अप्रकट होनेके विषयमें ज्ञात होते ही वे श्रीदेवानन्द गौड़ीय मठमें उपस्थित हुए। हमलोगोंने उन्हींके आनुगत्यमें परमाराध्यतम श्रीश्रीगुरुदेवको समाधि प्रदान की। इतना ही नहीं, उन्होंने कृपा करके श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिका सम्मत संविधान और रूपरेखा भी प्रस्तुत कर दिया। इनके इन सब कल्याणजनक कार्योंसे समितिके सदस्यगण सदा–सर्वदा इनके ऋणी रहेंगे।

अपने अन्तिम दिनोंमें श्रील भक्तिश्रीरूप सिद्धान्ती महाराज कोलकाता स्थित अपने मठमें रहते थे एवं वहीं पर ही वे १७ सितम्बर, १९८५ को अप्रकट लीलामें प्रविष्ट हुए।

गोपाष्टमी

इसी कार्तिक–मासमें ही श्रीकृष्णकी बाल्य लीलाके समाप्त होनेपर उनकी पौगण्ड लीला प्रारम्भ हुई थी तथा वे प्रथम बार बछड़ोंको चरानेके लिए घरसे बाहर निकले थे। श्रीकृष्णकी आयु छोटी होनेके कारण श्रीनन्द बाबाने उन्हें केवल बछड़े चरानेकी ही आज्ञा दी थी, गैयाएँ नहीं। जिस दिन श्रीकृष्ण गोप बनकर

बछडे चरानेके लिए पहली बार बाहर गये थे, उस दिन अष्टमी तिथि थी, इसलिए तभीसे यह तिथि गोपाष्टमी कहलाती है।

जब श्रीकृष्णने कैशोर अवस्थाको प्राप्त किया, तब श्रीनन्द बाबाने इसी गोपाष्टमीके दिन ही उन्हें गैयाओंको चरानेकी भी आज्ञा प्रदान की थी।

श्रीकृष्ण बछड़ों और गैयाओंको चरानेके लिए क्यों जाते हैं? श्रीकृष्ण गाय चरानेके बहाने अपने घरके बन्धनसे तथा माता–पिता और वृद्ध गुरुजनोंकी दृष्टिसे बचकर वनमें श्रीमती राधिका आदि गोपियोंसे मिलते हैं। गोपाष्टमी तिथि श्रीकृष्णकी गोपियोंके साथ अन्तरङ्ग मिलनकी अभिलाषाको पूर्ण करानेवाली तिथि है।

शरद्–ऋतुमें वृन्दावनकी शोभा एवं गैयाएँ चरानेके उद्देश्यसे श्रीकृष्णका वृन्दावनमें प्रवेश

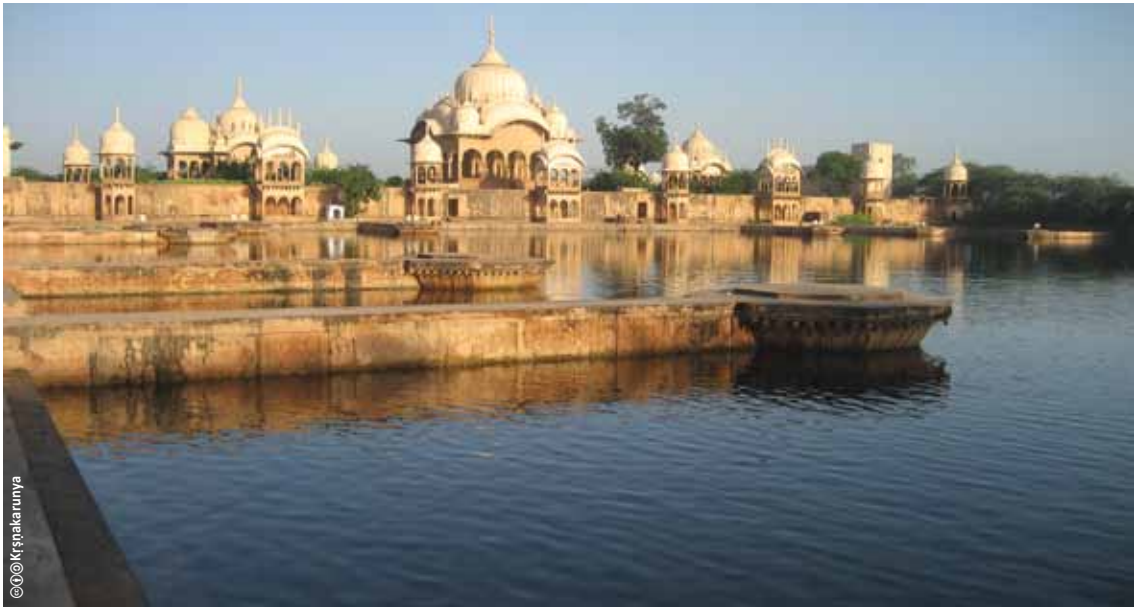

सर्वप्रथम शरद ऋतुमें ही अच्युत श्रीकृष्णने अपने सखाओं सहित वनमें प्रवेश किया था। शरद् ऋतुमें वृन्दावन अत्यन्त मनोहर रूप धारण करता है। वर्षा ऋतुमें नदियों तथा सरोवरोंका जल थोड़ा मैला हो जाता है, किन्तु जब वर्षा ऋतु समाप्त होती है तथा शरद् ऋतु प्रारम्भ होती है, तब मानसी गङ्गा, कुसुम सरोवर आदि सभी सरोवरोंका जल निर्मल हो जाता है। उनमें अत्यन्त सुगन्धित कमल खिल उठते हैं और उन कमलोंकी सुगन्धको सर्वत्र पहुँचानेवाली पवन धीरे–धीरे बहने लगती है। ऐसे सुन्दर वातावरणमें अच्युत श्रीकृष्ण गैयाएँ चरानेके लिए वनमें प्रवेश करते हैं।

(श्रीमती राधिकाके अत्यंत प्रिय शुक) श्रीशुकदेव गोस्वामी श्रीपरीक्षित महाराजसे कहते हैं–

इत्थं शरत्स्वच्छजलं पद्माकरसुगन्धिना।
न्यविशद् वायुना वातं सगोगोपालकोऽच्युतः॥

(श्रीमद्भा॰ १०/२१/१)

हे राजन्! अत्यन्त मनोहर शरद् ऋतुके कारण वृन्दावनकी शोभा अपूर्व लग रही थी। नदियाँ, तालाब और सरोवर पानीसे लबालब थे। सरोवरोंमें खिले हुए कमलकी भीनी–भीनी सुगंधको वहन करता हुआ समीर मंद–मंद बह रहा था। ऐसे रमणीय वातावरणमें

ग्वालबालों और गैयाओंके साथ नन्दनन्दन अच्युत श्रीकृष्णने उस अतुलनीय मनोहर वृन्दावनमें प्रवेश किया।

कुसुमितवनराजिशुष्मिभृंग–
द्विजकुलघुष्टसरःसरिन्महीध्रम्।
मधुपतिरवगाह्य चारयन् गाः
सहपशुपालबलश्चुकूजवेणुम्॥

(श्रीमद्भा० १०/२१/२)

रंग–बिरंगे तथा मधुर सौरभसे युक्त पुष्पोंसे लदे हुए हरे–भरे वृक्षोंकी पंक्तियोंमें मतवाले भँवरे गुंजार करते हुए इधर–उधर मँडरा रहे थे। विभिन्न प्रकारके पक्षियोंके झुण्ड–के–झुण्ड मीठे और मधुर कलरव करते हुए विहार कर रहे थे, जिससे वृन्दावनकी नदियाँ, सरोवर और पर्वत गूँज रहे थे। ऐसे वृन्दावनमें ग्वालबालों और बलदेवजीके साथ मधुपति श्रीकृष्णने प्रवेश किया और गैयाओंको चराते हुए अपने वेणुपर अत्यन्त मधुर और रसीली तान छेड़ी।

गोपियों द्वारा भाव–नेत्रोंसे श्रीकृष्णके वनमें प्रविष्ट होनेका दर्शन

इसी गोपाष्टमीके दिन ही गोपियाँ अपने घरोंमें रहते हुए श्रीकृष्णसे अत्यन्त विरह अनुभव करती हैं और साथ ही अपने भाव–नेत्रोंसे श्रीकृष्णका वनमें प्रवेश करते हुए दर्शन करती हैं।

गोपियों द्वारा श्रीकृष्णकी गोचारण–लीलाका स्मरण

बर्हापीडं नटवरवपुः कर्णयोः कर्णिकारं
बिभ्रद्वासः कनककपिशं वैजयन्तीं च मालाम्।
रन्ध्रान् वेणोरधरसुधया पूरयन् गोपवृन्दै–
र्वृन्दारण्यं स्वपदरमणं प्राविशद् गीतकीर्तिः॥

(श्रीमद्भा० १०/२१/५)

(गोपियाँ अपने भावनेत्रोंसे देखने लगीं) श्यामसुन्दर अपने सखा गोपबालकोंके साथ वृन्दारण्यमें प्रवेश कर रहे हैं। उनके सिरपर मयूरपुच्छ, कानोंमें कनेरका फूल, अङ्गोंपर स्वर्ण जैसा चमकता पीला पीताम्बर और गलेमें पाँच प्रकारके सुगन्धित पुष्पोंसे ग्रथित घुटनोंतक लंबी मनोहर वनमाला विराजमान है। रंगमंचपर सुंदर अभिनय करनेवाले नटवरके समान उनका सुंदर वेश है और वे वेणुके छिद्रोंसे अपना अधरामृत प्रवाहित कर रहे हैं। उनके पीछे–पीछे ग्वालबाल उनकी कीर्तिका गान कर रहे हैं। इस प्रकार वैकुण्ठसे भी अति रमणीय यह वृन्दावनधाम उनके शंख, चक्र आदि लक्षणोंसे युक्त चरणकमलोंके चिन्होंसे अङ्कित होकर और भी सुशोभित हो गया है।

महाभाववती गोपियोंके मनकी अभिलाषा

इसी गोचारण–लीलाके समय ही गोपियोंने अपने घरोंमें आपसमें इस प्रकार श्रीकृष्णका स्मरण करते हुए कीर्त्तन किया था—

अक्षण्वतां फलमिदं न परं विदामः
सख्यः पशूननु विवेशयतोर्वयस्यैः।
वक्त्रं व्रजेशसुतयोरनुवेणुजुष्टं
यैर्वा निपीतमनुरक्तकटाक्षमोक्षम्॥

(श्रीमद्भा० १०/२१/७)

गोपियाँ अपनी सखियोंके प्रति कहती हैं—"अरी सखियो! गैयाओं सहित ग्वाल–बालोंसे घिरे हुए

श्रीकृष्ण–बलदेव जब वनमें प्रवेश करते हैं [तथा जब श्रीकृष्ण श्रीबलदेवसे थोड़ा पीछे रहनेकी इच्छासे जान–बूझकर कुछ धीरे–धीरे चलने लगते हैं, उस समय] उनके वेणु–गीतसे युक्त तथा अनुरक्तजनोंके प्रति कटाक्ष करनेवाले मुखकमलका अपने नेत्रोंके द्वारा जो दर्शन करते हैं, वे ही धन्य हैं। नेत्रधारी व्यक्तियोंके लिये नेत्रोंको धारण करनेका इससे बढ़कर और अधिक कोई फल नहीं हो सकता।"

धन्याः स्म मूढगतयोऽपि हरिण्य एता
या नन्दनन्दनमुपात्तविचित्रवेशम्।
आकर्ण्य वेणुरणितं सहकृष्णसाराः
पूजां दधुर्विरचितां प्रणयावलोकैः॥

(श्रीमद्भा॰ १०/२१/११)

"अरी सखि! जब नन्दनन्दन श्यामसुन्दर विचित्र वेष धारण करके अपने वेणुपर मधुर तान छेड़ते हैं,

तब अज्ञानतम पशु–योनिमें जन्म ग्रहण करनेवाली मूढ़, बुद्धिहीन हिरणियाँ भी उसे सुनते ही अपने पति कृष्णसार हिरणोंके साथ उनकी ओर दौड़ती हैं और अपनी प्रेमभरी बड़ी–बड़ी आँखोंसे उन्हें निहारने लगती हैं। निहारती क्या हैं, सखि! अपनी कमल जैसी बड़ी–बड़ी आँखोंके तिरछे कटाक्षोंके द्वारा वे उनका अर्चन करती हैं और श्रीकृष्णके प्रेमभरे चितवनके द्वारा किया हुआ अपना सत्कार स्वीकार करती हैं। वास्तवमें उनका जीवन धन्य है। सखि, हम वृन्दावनकी गोपियाँ होनेपर भी इस प्रकार स्वयंको समर्पित नहीं कर सकती हैं। हमारे घरवाले मन–ही–मन दुःखी होने लगते हैं। कितनी विडम्बना है?।"

गोपियों द्वारा विरहमें अनुताप

इसी गोचारण लीलाके समय ही श्रीकृष्णसे विरह अनुभव करते हुए गोपियोंने अनुताप करते हुए कहा था—"हम इन हिरणियों जैसी सौभाग्यशाली नहीं हैं। लोग कहते हैं कि वे हिरणियाँ मूढ़ हैं, परन्तु वे हिरणियाँ नहीं, बल्कि हम ही मूढ़ हैं। कारण हम नहीं जानतीं कि किस प्रकार इन हिरणियोंकी भाँति श्रीकृष्णको प्रेम करना चाहिए। जब प्रेम अधिक होता है, तब वह समस्त सीमाओंको लाँघ जाता है। यद्यपि ये हिरणियाँ स्वभावसे लज्जाशील हैं, तब भी इन्होंने श्रीकृष्णके प्रेममें सभी सीमाओंको तोड़ दिया है। वे अपने हृदयके प्रेमको अपने प्रेमपूर्ण कटाक्षोंसे समर्पण कर रही हैं। परन्तु हम ऐसा नहीं कर सकतीं, अतएव हम दुर्भागिनी हैं। यदि हम मरकर अगले जन्ममें हिरणीके रूपमें जन्म ग्रहण कर सकें, तभी हम अपनेको सौभाग्यशाली समझेंगी।"

Painting by Śyāmarāṇī dāsī ©BBT

इसी गोचारण लीलाके समय ही गोपियोंने यह भी स्मरण किया था कि श्रीकृष्ण जब वेणु बजाते हैं, तब गायें स्तम्भित रह जाती हैं। भाव–नेत्रोंसे गोपियोंने श्रीकृष्ण और गैयाओं—दोनोंको देखते हुए विरहमें अनुताप किया था। उन्होंने देखा था कि यद्यपि पशुओंका

स्वभाव खाने और चबानेमें समय व्यतीत करना ही है, तथापि जब श्रीकृष्ण वेणु बजाते हैं, तब गैयाएँ घास खाना भूल जाती हैं और अपने कानोंको ऊपर उठाकर वेणु ध्वनिको श्रवण करती हैं। मनुष्योंका कान छोटा होता है, किन्तु गैयाओंका कान बड़ा होता है। गैयाएँ अपने कानसे श्रीकृष्णकी वेणु–वादनामृतका पान करती हैं और जिस समय वे इसका अद्भुत आस्वादन करती हैं, तब वे सब कुछ भूल जाती हैं। उनके मुखमें घास होती हैं, किन्तु वे उसे चबाना भूल जाती हैं। उनके थनोंका दूध पीनेवाले उनके बछड़े भी दूध पीना भूल जाते हैं। गैयाएँ अपने नेत्रोंसे अश्रु बहाते हुए श्रीकृष्णको अपने हृदयके अभ्यन्तरमें ले जाकर उनका आलिङ्गन करती हैं।

यद्यपि श्रीकृष्णके प्रति उन गैयाओंका प्रेम गोपियोंके प्रेमसे अधिक नहीं हैं, किन्तु प्रेमके स्वभावके कारण गोपियाँ विचार करती हैं कि गैयाएँ हमसे श्रेष्ठ हैं। जो महाभागवत हैं, वे अपने प्रेम और भावका सर्वत्र दर्शन करते हैं, तब महामहाभगवती गोपियोंके सम्बन्धमें तो फिर कहना ही क्या है। तथापि वे समझती हैं कि "हम दुर्भागिनी हैं, कृष्णके प्रति हमारे हृदयमें कोई प्रेम नहीं है।"

मादनाख्य–महाभावकी अवस्थामें श्रीमती राधिकाका विलाप

इसी गोचारण लीलाका भावमय दर्शन करते समय ही श्रीमती राधिकाने श्रीकृष्ण–विरहमें विलाप करते हुए इस प्रकार कहा था—

पूर्णाः पुलिन्द्य उरुगायपदाब्जराग
श्रीकुंकुमेन दयितास्तनमण्डितेन।
तद्दर्शनस्मररुजस्तृणरूषितेन
लिम्पन्त्य आननकुचेषु जहुस्तदाधिम्॥

(श्रीमद्भा॰ १०/२१/१७)

"हे सखि! यह वनचारी पुलिन्दी स्त्रियाँ पूर्ण हैं, क्योंकि इनके हृदयमें श्रीश्यामसुन्दरके प्रति अत्यधिक प्रेम है। सखि! जब ये उन्हें देखती हैं, तब इनमें भी कामपीड़ा जाग्रत होती है। किसी प्रेयसीके वक्षःस्थलपर धारण किया हुआ कुंकुम श्रीकृष्णके चरणोंसे संलग्न होकर तृणराजिमें लग गया था, स्मरपीड़ासे उद्दीप्त पुलिन्द कन्याओंने जैसे ही उस कुंकुमको देखा, साथ–ही–साथ उसे उठाकर अपने मुखमण्डल एवं कुचमण डलपर लेपन करके अपनी कामपीड़ाको शान्त किया।"

श्रीकृष्ण जब प्रातःकाल कुञ्ज–निकुञ्जसे निकलकर नन्दग्राम की ओर जाते हैं, उसी समय उनके चरणोंमें लगा हुआ यह कुङ्कुम ओसकी बूँदोंसे गीली हुई घासपर लग जाता है। किन्तु श्रीकृष्णके चरणकमलोंमें संलग्न यह कुङ्कुम तो श्रीकृष्णकी प्रियाओंका कुचकुङ्कुम ही है। प्रातःकाल श्रीगिरिराजजीकी तलहटीमें भ्रमण करते समय पुलिन्द कन्याएँ घासपर लगे हुए उस कुङ्कुमको देखकर उसे संग्रह करती हैं। श्रीकृष्णके चरणकमलोंसे आये गोपियोंके कुचकुङ्कुमको प्राप्तकर पुलिन्द कन्याएँ अपनेको धन्यातिधन्य मानती हैं। उस कुङ्कुमके सौरभकी घ्राण लेनेमात्रसे ही श्रीकृष्ण उनके हृदयमें आविर्भूत हो जाते हैं और वे उस कुङ्कुमको अपने समस्त अङ्गों तथा मुखपर लेपन कर लेती हैं। श्रीकृष्ण उनकी समस्त कामनाओंको पूर्ण कर देते हैं।

श्रीमती राधिका इन पुलिन्द कन्याओंको धन्य समझती हैं, किन्तु उन पुलिन्द कन्याओंसे धन्य तो वह घास है जिसपर स्वयं श्रीकृष्णके चरणकमलका स्पर्श हुआ था और उससे भी धन्य तो वह गोपी है जिसके स्तनसे यह कुङ्कुम आया है। वह गोपी स्वयं श्रीमती राधाजी हैं, किन्तु मादनाख्य–महाभावके कारण वे इसे भूल जाती हैं और दूसरोंकी स्तुति करती है। वास्तवमें यह वचन श्रीमती राधाजीके मदनाख्य–महाभावके उदाहरण स्वरूप हैं।

भीष्म-पञ्चक, उत्थान-एकादशी एवं श्रील गौर किशोरदास बाबाजी महाराजकी तिरोभाव तिथि

कार्तिक मासकी उत्थान एकादशीसे प्रारम्भ करके पूर्णिमा तकके पाँच दिन भीष्म पञ्चकके नामसे जाने जाते हैं। बहुतसे भक्त लोग इन पाँच दिनोंमें अनेक पारमार्थिक क्रियाएँ करते हैं। शयन एकादशीसे प्रारम्भ करके उत्थान एकादशी तकके चार मासोंमें भगवान् श्रीहरि शयन करते हैं और इस उत्थान एकादशीके दिन उठते हैं। इसीलिए इस एकादशीका नाम उत्थान एकादशी है। इसी उत्थान एकादशीके दिन ही विश्वविख्यात मेरे परमाराध्य परमगुरुदेव श्रीश्रीमद्भक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी ठाकुर प्रभुपादके गुरुदेव श्रील गौरकिशोर दास बाबाजी महाराजने नित्यलीलामें प्रविष्ट किया था।

श्रील गौरकिशोरदास बाबाजी महाराज व्रजमण्डल, गौड़मण्डल एवं क्षेत्रमण्डलमें सर्वत्र ही सिद्ध बाबाजीके रूपमें प्रसिद्ध थे। इनका आविर्भाव पूर्व बंगालके किसी ग्राममें हुआ था। ये बचपनमें ही घर-बार छोड़कर भगवद्भजन करनेके लिए श्रीधाम वृन्दावनमें चले गए। वहाँ सूर्यकुण्डमें कठोर वैराग्य अवलम्बनपूर्वक साधन-भजन करने लगे। वहाँ श्रीमधुसूदन दास बाबाजीके शिष्य वैष्णव सार्वभौम श्रीजगन्नाथ दास बाबाजी महाराजके संगमें रहकर हरिकथा इत्यादि श्रवण करते थे। इनका वैराग्य इतना कठोर था कि कभी-कभी भूख लगनेपर श्रीराधाकुण्ड अथवा यमुनाका कीचड़ भी खा लेते। फलस्वरूप इनकी आँखोंकी ज्योति चली गई। फिर भी छह गोस्वामियोंकी भाँति कभी राधाकुण्ड, कभी श्रीधामवृन्दावन, कभी नन्दगाँव-बरसाना तो कभी भाण्डीरवन आदि कृष्णलीला-स्थलियोंमें कुछ-कुछ दिनोंके लिए निवास करते और बड़े विरहमें कातर होकर उच्च स्वरसे 'कोथाय गो प्रेममयी राधे! राधे!' गान करते थे।

जब उनसे श्रीधाम वृन्दावनमें आराध्या देवी श्रीमती राधिकाका विरह सहन नहीं हुआ, तब वे श्रीधाम नवद्वीपमें उपस्थित हुए।

श्रीगौरकिशोरदास बाबाजी महाराज कुलिया शहरमें निवास करते हुए भजन करने लगे। यह स्मरण रहे कि उस समय तक श्रीगौर-आविर्भावस्थली श्रीधाम मायापुरका पूर्णरूपसे विकास नहीं हुआ था। श्रील भक्तिविनोद ठाकुर भी श्रीधाम मायापुरसे कुछ दूर गंगातटपर अवस्थित श्रीगोद्रुम द्वीपमें एक भजनकुटीमें रहकर बड़े विप्रलम्भ भावसे भजन करते थे। बाबाजी महाराज प्रायः कुलिया शहरसे श्रील भक्तिविनोद ठाकुरके पास आते थे। इन दोनोंमें सर्वदा श्रीगौरसुन्दर एवं राधाकृष्णकी औदार्य-माधुर्यपूर्ण लीला-कथाओंकी चर्चाएँ होती थीं। इनका वैराग्य श्रील रघुनाथ दास गोस्वामीके समान अत्यन्त उच्च कोटिका था। बड़े-बड़े महात्मा एवं भजनानन्दी इनके दर्शनसे अपना जीवन कृतार्थ समझते थे। जगद्गुरु नित्यलीला प्रविष्ट श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती 'प्रभुपाद' ने इन्हीं महापुरुषको गुरुके रूपमें वरण किया था। बाबाजी महाराज सांसारिक विभिन्न प्रकारके प्रपंचों एवं भक्तिहीन विषयी और तथाकथित धर्मध्वजियोंसे दूर रहकर कुलिया नवद्वीपमें किसी प्रकार रहकर श्रील लोकनाथ गोस्वामी

आदिकी भाँति भजनान्दमें विभोर रहते थे। मधुकरी भिक्षा द्वारा अनायास ही जीवननिर्वाहकर षड्गोस्वामियोंकी भाँति चौबीस घंटे भजनमें अतिवाहित करते थे। प्रायः गंगा पारकर गोद्रुममें वे सप्तम गोस्वामी श्रील भक्तिविनोद ठाकुरका सत्संग लाभ करने जाया करते थे।

एक समय विषयी लोगोंसे तंग आकर वे कुलिया नगर (वर्तमान नवद्वीप शहर) के एक सार्वजनिक धर्मशालाके शौचालयमें भीतरसे दरवाजा बंदकर भजन करने लगे। लोगोंको यह पता नहीं चल सका कि बाबाजी कहाँ चले गए। इन्होंने पैखानेके दुर्गंधको विषयी लोगोंके दुःसंगसे उत्तम समझा, इसीलिए दुर्गंधमय स्थानमें रहकर भजन करना ही श्रेयस्कर माना। दो–तीन दिनोंके पश्चात् मेहतरानी टट्टी साफ करनेके लिए पैखानेके नीचे आई, तो उसने 'हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे। हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।।' की विरहकातर करुण ध्वनि सुनी। उसने ऊपरकी ओर झाँककर देखा, श्रील बाबाजी महाराज भावविभोर होकर हरिनाम कर रहे थे। उन्हें तन–मन और दुर्गंध आदिकी सुध–बुध नहीं थी। ऐसा देखकर वह चकित रह गई। उसने तुरन्त नगरपालिकाध्यक्षको इसकी सूचना दी। थोड़ी ही देरमें यह संवाद जिलाधिकारी एवं पुलिस अधीक्षक आदिके कानोंमें पहुँचा। ये सभी लोग श्रील बाबाजी महाराजके निकट आकर उन्हें पैखानेका दरवाजा खोलकर बाहर आनेके लिए अनुरोध करने लगे। उन्होंने कहा—"बाबाजी महाराज! हमलोगोंने भगवती गंगाके किनारे आपके लिए भजनकुटी की व्यवस्था की है। आप वहाँ रहकर भजन करें।" किन्तु बाबाजी महाराजने उनकी बातोंपर तनिक भी ध्यान नहीं दिया और अविश्रान्त हरिनाम करते रहे। उन उच्च पदस्थ अधिकारियोंके द्वारा पुनः पुनः आग्रह करनेपर श्रील बाबाजी महाराजने अत्यन्त क्षीण स्वरसे केवल इतना ही कहा—"मैं अस्वस्थ हूँ। मैं दरवाजा नहीं खोल सकता।" उक्त अधिकारीगण हारकर अन्तमें चले गए।

इसी समय थोड़ी देरके बाद श्रील प्रभुपादके निर्देशसे सरोजिनी देवी, प्रियतमा देवी तथा श्रीगौरगोविन्द विद्याभूषण (संन्यास ग्रहणके पश्चात् त्रिदण्डिस्वामी श्रीश्रीमद्भक्तिगभस्ति नेमि महाराज) के साथ श्रीविनोदविहारी ब्रह्मचारी मायापुरसे श्रील बाबाजी महाराजके दर्शनके लिए उपस्थित हुए। किन्तु बार–बार अनुरोध करनेपर भी श्रील बाबाजी महाराज कपाट खोलनेको तैयार नहीं हुए, बहाना बनाते रहे। ऐसा देखकर श्रीगौरगोविन्द प्रभुने बड़े ही विनीत स्वरसे कहा—"बाबाजी महाराज! हमलोग श्रील सरस्वती ठाकुरके अनुगृहीत शिष्य हैं। उन्हींके निर्देशसे बड़ी आशा लेकर आपके दर्शनके लिए आए हैं। आपका दर्शन नहीं पानेसे हम बड़े मर्माहत होंगे।" इतना सुनते ही बाबाजी महाराज बड़े प्रसन्न हुए और अत्यन्त स्नेहपूर्वक कहा—"आओ, तुमलोग सरस्वती ठाकुरके स्नेहपात्र हो।" और जल्दीसे दरवाजा खोल दिया। उस समय वे कपड़ेकी गाँठ द्वारा बनी हरिनामकी मालिकापर तन्मयतापूर्वक हरिनाम कर रहे थे। तभी श्रीविनोदविहारी ब्रह्मचारीका परम सौम्य किशोर रूप, भजन करनेकी निष्कपट लालसा, युक्तवैराग्यका अंकुर तथा सर्वोपरि गुरुनिष्ठा लक्ष्यकर आशीर्वाद देते हुए कहा—"मैंने तुम्हारे जीवनकी सारी विपत्तियों और विघ्न–बाधाओंको ग्रहण किया। तुम निर्भीक होकर भजन करो तथा विश्वमें सर्वत्र श्रीमन्महाप्रभुकी वाणीका प्रचार करो।" ऐसा आशीर्वाद सुनकर श्रीविनोदविहारीकी आँखें छलछला आईं। वे सजल नेत्रोंसे उनके चरणोंमें गिर पड़े और उनकी चरणधूलि अपने मस्तकपर धारण की। कुछ देर तक हरिकथा श्रवण करनेके बाद बाबाजी महाराजकी चरणवन्दना कर श्रीमायापुरके लिए विदा हुए।

श्रील गुरुपादपद्म प्रसंगवशतः श्रील बाबाजी महाराजके आशीर्वादकी बातोंको हमें सुनाते–सुनाते बालककी भाँति अधीर होकर क्रन्दन करने लगते थे और कहते—"श्रील बाबाजी महाराजकी अहैतुकी कृपासे ही आज मैं विश्वमें बड़े निर्भीक होकर शुद्ध भक्तिका प्रचार कर रहा हूँ। प्रचारके समय हमारे ऊपर बड़ी–बड़ी विपत्तियाँ एवं विघ्न–बाधाएँ उपस्थित हुईं, प्राणोंके संकट भी उपस्थित हुए, किन्तु श्रील गौरकिशोरदास बाबाजी महाराजकी कृपासे हमारा बाल भी बाँका नहीं हुआ। विपत्तियोंके बादल शीघ्र ही छँट गए।"

व्रजवासियों द्वारा वैकुण्ठ–धामका दर्शन

इसी कार्तिक मासकी द्वादशीके दिन श्रीनन्द बाबा जब एकादशी व्रत पालन करनेके बाद ब्रह्ममूहुर्त्तसे थोड़ी देर पहले यमुनामें स्नान करनेके लिये गये, तो वरुण देवताने उनका अपहरण कर लिया। तत्पश्चात् नन्द बाबाको ढूँढ़ते हुए श्रीकृष्ण भी वरुणलोक गये और श्रीनन्द बाबाको पुनः व्रज ले आये।

इसी उपलक्ष्यमें श्रीकृष्णने समस्त व्रजवासियोंको ब्रह्महृदमें वैकुण्ठ–धामका दर्शन कराया था।

श्रीश्रीमद्भक्तिप्रमोद पुरी गोस्वामी महाराजजीकी तिरोभाव तिथि

कार्तिक–मासकी शुक्ला चतुर्दशीके दिन मेरे शिक्षा गुरु श्रील भक्तिप्रमोद पुरी महाराजजीकी तिरोभाव–तिथि है। नवम्बर १९४६ ई॰ में मैं घर त्यागकर श्रीधाम नवद्वीप स्थित श्रीदेवानन्द गौड़ीय मठमें आकर अपने परमाराध्य गुरुपादपद्म श्रीश्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराजजीके श्रीचरणकमलोंका आश्रय ग्रहण किया। उसके कुछ समय बाद १९४७ ई॰ में श्रीधाम नवद्वीप परिक्रमाके बाद ही श्रील गुरु महाराजने मुझे श्रीहरिनाम और दीक्षा प्रदानकर मेरे जीवनको धन्यातिधन्य कर दिया। उसके बाद मैं श्रील गुरुदेवके साथ श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिकी शाखा श्रीउद्धारण गौड़ीय मठ, चुँचुड़ा गया। वहींपर मैंने प्रपूज्यचरण श्रीश्रीमद्भक्तिप्रमोद पुरी महाराजजीके चरणकमलोंका प्रथम बार दर्शन किया। उन्होंने भी कुछ समय पूर्व ही मार्च ३, १९४७ को संन्यास ग्रहण किया था।

मैं उनका दर्शन पाकर उनसे बहुत प्रभावित हुआ और मेरे परमाराध्य गुरुदेवने मुझे उनकी सेवामें नियुक्त कर दिया। मैं प्रतिदिन उनके साथ गङ्गामें स्नान करनेके लिए जाया करता था। तब मैं उनके बहिर्वास, कौपीन, कमण्डलु आदि लेकर जाता था। स्नानके बाद उनके गीले कपड़े, पानीसे भरे कमण्डलुको उठाकर मठ वापस आता था। तत्पश्चात् उन्हें प्रसाद परिवेशन करता था। साथ ही उनके द्वारा प्रदत्त अनेक आदेश–उपदेशोंको भी श्रद्धापूर्वक पालन करता था। मैं विनीत भावसे उनसे परिप्रश्न करता था और वे भी कृपापूर्वक अत्यन्त स्नेह सहित उसका उत्तर प्रदान करते थे।

श्रील प्रभुपाद उनकी निष्ठा, सम्पूर्ण समर्पण, भावपूर्ण सेवा और विशेषतः उनकी लिखनेकी शैली आदिसे अत्यन्त प्रसन्न थे। इसीलिए श्रील प्रभुपादने उन्हें सङ्कीर्त्तन, प्रचार, हरिकथा, बृहद्–मृदङ्गकी सेवा, विशेष करके दैनिक नदिया प्रकाश और गौड़ीय मठसे प्रकाशित होनेवाली अन्यान्य पत्रिकाओंमें प्रबन्ध लिखनेका दायित्व दिया था। बृहद्–मुदङ्गकी सेवा हेतु वे कोलकता, कृष्णनगर, मायापार आदि विभिन्न स्थानोंमें वास करते थे। गौरवाणी प्रचार हेतु उन्होंने केवल बङ्गाल ही नहीं, बल्कि भारतके विभिन्न प्रान्तोंमें भ्रमण किया और सफलता भी प्राप्त की। कभी श्रील प्रभुपादजीके साथ और कभी श्रील प्रभुपादजीके

अन्तरङ्ग संन्यासियोंके साथ भ्रमण करते हुए उन्होंने अपने गुरुदेवकी अन्तरङ्ग मनोऽभीष्ट सेवाएँ की।

मुझे उनकी सेवा करने और उनसे हरिकथा श्रवण करनेका परम सौभाग्य प्राप्त हुआ था। उनका मेरे प्रति अत्यधिक स्नेह था, वे मुझे अपना शिष्य ही समझते थे और मैं भी उन्हें अपने गुरुदेवकी भाँति ही सम्मान किया करता था।

मैं उन्हें सदैव लेखन कार्यमें ही व्यस्त देखता था। उनकी कलम कभी भी नहीं नहीं रुकती थी। वे अपने प्रत्येक क्षणको शुद्धभक्तिके सम्बन्धमें प्रबन्धादि लिखनेमें ही व्यतीत करते थे।

हमारे परमाराध्य गुरुदेवके नित्यलीलामें प्रवेश करनेके उपरान्त तथा श्रीदेवानन्द मठमें उनकी समाधिके समय जब श्रील भक्तिप्रमोद पुरी महाराजजी हमें सान्त्वना देनेके लिए वहाँ उपस्थित हुए थे, उस समय उन्होंने गद्‌गद् स्वरसे कहा था कि विनोद दाने मुझपर बहुत कृपा की है। जब कभी हम ज्ञात होता था कि विनोद दा मायापुरमें नहीं है, हम मायापुर जानेका कार्यक्रम ही स्थगित कर देते थे।

अतएव श्रील पुरी महाराज सम्पूर्ण रूपसे शरणागत और श्रील प्रभुपादजीके अन्तरङ्ग पार्षद थे। यद्यपि कीर्त्तन और हरिकथा करते समय वे अपने नेत्रोंको बन्द कर लेते थे, किन्तु भक्ति–भावमें निमग्न होनेके कारण उनके नेत्रोंसे अश्रु प्रवाहित होते रहते थे। भक्तितत्त्व और रस तत्त्वकी आलोचनाके समय वे अपने आन्तरिक अनुभवोंको व्यक्तकर समस्त श्रोताओंको मन्त्रमुग्ध कर देते थे। वे श्रीमन्महाप्रभु द्वारा कथित 'तृणादपि सुनीच' श्लोककी प्रतिमूर्ति थे। वे परम भागवत और गुणग्राही थे। आज तक मैंने उन्हें किसीकी निन्दा करते हुए नहीं देखा है। मुझ जैसे तुच्छ और भक्तिसे सम्पूर्ण रूपसे रहित व्यक्तिको भी वैष्णवोचित अत्यधिक आदर–सम्मान तथा भक्ति–सेवा करने हेतु प्रेरणा प्रदान करते थे।

वे समस्त सिद्धान्तोंमें निपुण थे और श्रील भक्तिसिद्धान्त प्रभुपादकी धारामें एक शुद्ध भक्त थे। मैं उनके उपदेश और आशीर्वादसे अधिकाधिक प्रेरणा प्राप्त करता था। अब उनके नित्यलीलामें प्रवेश कर जानेके बाद उनके उन हस्तकमलोंके स्पर्शका अभाव अनुभव कर रहा हूँ जो मुझपर कृपाशीर्वाद और प्रेरणाका वर्षण किया करते थे। उनके अभावमें मैं गम्भीर विरह अनुभव कर रहा हूँ।

हेमन्तिकी रास–पूर्णिमा

कार्तिक मासका अन्तिम दिन हेमन्तिकी रासपूर्णिमाके नामसे प्रसिद्ध है। इस मासमें यद्यपि भगवान्‌की अन्यान्य अनेक लीलाएँ सम्पादित हुई हैं, तथापि हमने उनमेंसे कुछेक लीलाओंके विषयमें ही वर्णन किया है।

कार्तिक–मासमें हुई अन्यान्य लीलाएँ

कार्तिक मासमें अन्यान्य और जो लीलाएँ हुई हैं उनमेंसे कुछेक लीलाओं की तिथिके विषयमें स्पष्टरूपसे जानकारी नहीं होनेके कारण मैं उनका एक ही साथमें वर्णन कर रहा हूँ। यथा—

इसी कार्तिक मासमें श्रीकृष्णने शङ्खचूड दैत्यका वध करके उसके सिरसे मणिको काटकर निकाल लिया था। वही मणि बादमें श्रीबलदेवजीके माध्यमसे श्रीमती राधाजीको प्राप्त हुई थी।

इसी कार्तिक मासमें श्रीकृष्णने अघासुर, बकासुर, केशी तथा व्यामोसुर आदि दैत्योंका संहार किया था।

तत्पश्चात् भगवान् श्रीकृष्ण और श्रीनारद ऋषिका संवाद सम्पन्न हुआ। श्रीनारद ऋषिने श्रीकृष्णसे कहा था कि आप व्रजलीलामें अति आविष्ट होनेके कारण यह भूल गये हैं कि इस व्रजसे बाहर कंस, शिशुपाल, दन्तवक्र आदि बहुतसे असुर आपकी प्रतीक्षा कर रहे हैं। श्रीकृष्णने कहा कि ठीक है, मैं शीघ्र ही उनका संहार करूँगा।

अक्रूरका व्रजमें आना एवं कृष्ण द्वारा कंसका वध

इसी कार्तिक मासमें ही श्रीकृष्णके हृदयकी अभिलाषाको जाननेवाली योगमायाने कंसके हृदयमें प्रेरणा दे करके उनके माध्यमसे अक्रूरको व्रजमें जानेके लिए आदेश दिलवाया तथा उन्हीं योगमायाने अक्रूरके माध्यमसे नन्द बाबा और व्रजवासियोंको मथुरा जानेके लिए प्रस्तुत कराया। अक्रूर स्वयं श्रीकृष्ण और बलदेवको मथुरा ले गये। इस घटनाके बाद गापियोंने अक्रूरको कभी भी अक्रूर कहकर सम्बोधित नहीं किया, बल्कि वे उन्हें 'क्रूर' कहकर उनके प्रति दोषारोपण करती थीं।

श्रीकृष्णने मथुरामें कंसका वध भी इसी मासमें ही किया था।

श्रीकृष्ण और बलरामका उपनयन संस्कार एवं कृष्ण द्वारा भाव–विभोर होकर माता यशोदाको पुकारना

इसी मासमें श्रीकृष्ण और बलरामका उपनयन संस्कार सम्पन्न हुआ था। व्रजमें पालन–पोषण होनेके कारण श्रीकृष्णके मनमें यह भाव था कि वे ग्वाल–बाल हैं और श्रीनन्द तथा श्रीयशोदा उनके माता–पिता हैं। किन्तु वसुदेव और देवकी विचार कर रहे थे कि यदि हम वैदिक संस्कृतिके अनुसार श्रीकृष्णका उपनयन संस्कार सम्पन्न करेंगे, तब श्रीकृष्णमें यह भाव आ जायेगा कि वसुदेव और देवकी ही मेरे वास्तविक माता–पिता हैं। इस प्रकार विचार करते हुए उन्होंने मथुरामें क्षत्रियोंके विधि–विधान अनुसार श्रीकृष्णका उपनयन–संस्कार सम्पन्न कराया।

उपनयन संस्कारके बाद माँसे भिक्षा माँगनी होती है। जब श्रीकृष्णको अपनी माँसे भिक्षा माँगने हेतु कहा गया तो वे हतप्रभ रह गये। यद्यपि देवकी सामने ही विराजामन थीं, फिर भी श्रीकृष्ण उनके निकट नहीं गये, बल्कि उन्हें तो अपनी मैया यशोदाजीका स्मरण हो आया। वे भाव–विभार होकर पुकारने लगे "हे माँ, तुम कहाँ हो?"

इस प्रकार देवकी और वसुदेवने प्रत्यक्ष देखा कि उपनयनका आयोजन करानेपर भी उनके मनकी अभिलाषा पूर्ण न हो सकी।

ब्रह्म–गायत्रीके श्रवण मात्रसे श्रीकृष्णके मूर्च्छित होनेका कारण

उपनयन संस्कारके समय श्रीगर्गाचार्यजीने श्रीकृष्णको ब्रह्म–गायत्री मन्त्र प्रदान किया था और श्रीकृष्णने जब इस मन्त्रको श्रवण किया, तब वे अचेतन हो गये। क्यों? क्योंकि श्रीमती राधिकाजी ही इस गायत्री मन्त्रकी अधिष्ठात्री देवी हैं।

उद्धव भी व्रजवासियोंको सान्त्वना देनेके लिए इसी मासमें व्रजमें आए थे।

मानसी गंगामें रासलीला पुष्टिकारी विभिन्न लीलाएँ

मानसी गंगामें नौका–लीला, वेणु–चोरी–लीला आदि रास–लीलाको पुष्ट करनेवाली श्रीकृष्णकी अगणित लीलाएँ भी इसी कार्तिक मासमें ही सम्पन्न हुई थी।

अमूल्य निधि

कार्तिक परिक्रमाके समय हमने हरिकथाके रूपमें आप लोगोंको जो अमूल्य निधि प्रदान की है, आप लोग उसे अपनी pocket में भरकर अपने साथ ले जाना। आप सब खाली pocket मत जाना। pocket आपका हृदय है, इसीलिए इन सभी विचारोंको ही अपने हृदयमें स्थान प्रदान करना तथा इन्हें अपने आचरणमें लाकर शुद्ध भक्त बननेका प्रयत्न करना।

करुणामय अभिभावकका निवेदन

श्रीकृष्णचैतन्य महाप्रभुकी अहैतुकी कृपासे ही विश्व यह जान सका है कि भगवत्ताका सार माधुर्य पर ही प्रतिष्ठित है। प्राचीन कालके समस्त वैष्णवचार्योंके मतानुसार ऐश्वर्य ही भगवत्ताका सार था। यद्यपि सभी भगवत् स्वरूप तत्त्वतः अभिन्न हैं, फिर भी 'रसो वै सः' (श्रुति), 'गूढं परं ब्रह्म मनुष्यलिङ्गम्' (भागवत) अर्थात् नराकृति परब्रह्म ब्रजेन्द्रनन्दन श्रीकृष्ण ही माधुर्यके साक्षात् मूर्तिमान विग्रह हैं। वे रसिकशेखर एवं अखिलरसामृतमूर्ति हैं। श्रीकृष्णमें सभी रसोंका विकास अन्तिम सीमा तक देखा जाता है। ब्रजविहारी श्रीकृष्णमें लीलामाधुर्य, गुणमाधुर्य, वेणुमाधुर्य और रूपमाधुर्य परिपूर्ण रूपमें परिलक्षित होता हैं। श्रीकृष्ण रसिकशेखर होनेके साथ–साथ परमकरुण भी हैं। प्रेमरसनिर्यासका आस्वादन करनेके लिए राधाभाव एवं उनकी गौरकान्तिको लेकर श्रीकृष्ण स्वयं ही श्रीचैतन्यमहाप्रभुके रूपमें अवतीर्ण हुए। उक्त चारों माधुरियोंका आस्वादन कर उन्होंने समस्त विश्वको उस प्रेमकी बाढ़में डुबो दिया। ऊँच–नीच, पवित्र–अपवित्र, पात्र–अपात्रका विचार किये बिना उन्होंने विश्वके निखिल जीवोंको प्रेम प्रदान कर कृतार्थ कर दिया। महाप्रभुकी कृपारूपी मेघमाला बंजर हृदयक्षेत्रमें भक्तिबीज वपनकर उसे अंकुरित, पल्लवित, पुष्पित ही नहीं करती, अपितु उसमें प्रेमफलका उदय भी करा देती है।

अतएव हे साधको! श्रील प्रबोधानन्द सरस्वतीपादके वचनोंको दोहराते हुए मैं दाँतोंमें तृण धारणकर दीनतापूर्ण वचनोंके द्वारा पुनः पुनः आपके चरणोंमें प्रार्थना करता हूँ कि सब प्रकारके मतभेद, अनर्थ, अपराध ईर्ष्यादिका त्यागकर श्रीव्रजमण्डलकी लीला–स्थलियोंको स्वयं तथा अपने परिकर श्रीरूप–सनातन आदिके माध्यमसे पुनः प्रकाशित करनेवाले श्रीचैतन्यचन्द्रके चरणकमलोंमें अनुराग उत्पन्न करें। अनादि कालसे हम जन्म मृत्युके चक्रमें फँसे हुए हैं, किसी प्रकार इस जन्ममें वैष्णव–संगका कुछ सुयोग प्राप्त हुआ है। भगवान्की अहैतुकी कृपाकी प्राप्ति हुई है,

गुरु–वैष्णवोंकी सेवासे सुकृति बनाकर भक्तिराज्यमें प्रवेश करनेकी चेष्टाके द्वारा महाप्रभुके श्रीचरणकमलोंमें अनुराग उत्पन्न करें, अन्यथा समय निकल जायेगा तो पुनः नहीं आयेगा। यह कलिकाल है, कलह अपने आप ही उत्पन्न हो जाता है। इसलिए इस मतभेदरूपी खुजलाहटको त्यागकर महाप्रभु–नित्यानन्दप्रभुके चरणोंमें अनुराग उत्पन्न करनेकी चेष्टा करें। हरि–गुरु–वैष्णवोंकी सेवाके लिए समस्त प्रकारके मतभेद त्याग दें। श्रील प्रभुपादकी आज्ञाको शिरोधार्य करके मिल–जुलकर आश्रय विग्रहके आनुगत्यमें विषय विग्रहकी सेवा करें। एकतामें ही बल है।

स्वप्नमें भी वैष्णवोंसे विवाद मत करें। एक बार भी यदि किसीने नाम ग्रहण किया है, तो उसका भी आदर करें। जिस किसीने भी गुरुजीकी तनिक भी सेवा की है, उसके प्रति चिर ऋणी रहें, तभी हमारे भजनकी उन्नति होगी। यदि गुरुजीका नाम लेकर कुत्ता भी आ जाए तो उसका भी सम्मान करें।

श्रील गुरुदेवकी करुणाका निदर्शन

[प्रत्येक वर्ष इसी कार्तिक मासमें श्रील गुरुदेवने पुनः पुनः अनेकानेक भक्तोंको व्रजमण्डल परिक्रमाके समय अपने दर्शन, सङ्ग, हरिकथा, स्नेह, मधुरवचन, दीक्षा–शिक्षा इत्यादि प्रदान करके उन्हें परम धन्य बनाया है। व्रजके प्रति उनकी निष्ठाको जागृत किया है, उन्हें राधा–दास्यके प्रति लोभान्वित किया है तथा व्रजरस–धारामें निमग्न किया है।]

व्रजभक्ति और व्रजकी संस्कृति एवं विकासके लिये संकल्पित श्रील गुरुदेव

[इसी कार्तिक मासमें ही सम्पूर्ण विश्वमें श्रीकृष्णभक्तिके प्रचार–प्रसार, ब्रज–भक्ति और संस्कृतिके संरक्षण एवं विकासके लिए संकल्पित तथा विश्वशान्तिके लिए समर्पित भगीरथी प्रयास[३] एवं योगदानके लिए ब्रजाचार्य पीठ, श्रीधाम बरसाना एवं विश्व धर्म संसद (World Religious Parliament) नई दिल्लीके संयुक्त तत्त्वावधानमें ऊँचागाँव (बरसाना) स्थित ब्रजाचार्य पीठ पर दिनांक ३१ अक्टूबर, २००३ को आयोजित अलंकरण समारोहमें गुरुदेव ॐविष्णुपाद श्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी महाराजको विभिन्न वेदज्ञ पण्डितोंके द्वारा स्वस्तिवाचन और पुष्पाभिषेकके

उपरान्त ब्रजाचार्य पीठके पीठाधीश श्रीनारायण भट्टके वंशज श्रीयुत् दीपकराज भट्टने 'युगाचार्य' (Acharya of Millennium) की उपाधिसे विभूषित किया था।

श्रीयुत् दीपकराज भट्टने कहा था कि ब्रजभूमिमें बहुत समयके उपरान्त किसी सन्त या आचार्यको ब्रजवासियोंने अपने शाश्वत प्रेमका परिचय देते हुए युगाचार्यकी उपाधिसे विभूषित किया है।]

[३] जिस प्रकार भगीरथ अत्यन्त कठोर प्रयास अर्थात् तीन-तीन बार एकनिष्ठासे तपस्या करके ब्रह्मा, शिव और गंगाको प्रसन्न करनेके उपरान्त इस धराधाममें ले आये थे। उसी प्रकारके अभिलषित प्रयासको 'भगीरथी प्रयास' कहते हैं।

श्रील गुरुदेव द्वारा श्रीगौड़ीय सम्प्रदायके गौरवके लिये 'युगाचार्य' उपाधिको स्वीकारकर गुरुवर्गके चरणोंमें समर्पण

[सभाके अन्तमें गुरुदेव श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी महाराजजीने दीपकराज भट्ट और नन्दगाँव, बरसानाके भक्तोंके प्रति नतमस्तक होकर कहा था—''मुझे जो सम्मान दिया गया है, उसके लिए मैं एक प्रतिशत भी योग्य नहीं हूँ। मैं तो स्वयं ही ब्रजवासियोंका सम्मान करता हूँ और उनके द्वारा प्रदत्त सम्मानको लेते हुए मुझे लज्जा और संकोच हो रहा है। मैं ब्रजभक्तिके पूर्व आचार्यों और सन्तोंके चरणोंकी धूलकणके समान भी नहीं हूँ। ब्रजसे विलुप्त होती जा रही श्रीकृष्णकी लीला–स्थलियोंको पुनः स्थापित करने और उनके विकासके लिए प्रतिबद्ध हूँ। यथार्थमें श्रील रूप–सनातन आदि षड़ गोस्वामी तथा उस रूपानुग धारामें श्रील भक्तिविनोद ठाकुर, श्रीलभक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर प्रभुपाद, मदीय गुरुपादपद्म श्रीलभक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराज तथा श्रीलप्रभुपादके समस्त परिकर ही युगाचार्य हैं। मुझमें जिन गुणोंको देखकर यह उपाधि प्रदान की गयी है, वास्तवमें ये समस्त गुण मेरे अपने नहीं हैं। मैंने तो केवल निष्कपटरूपसे रूपानुग गुरुवर्गकी सेवा करनेकी चेष्टामात्र की है। मैं जानता हूँ कि श्रीमन्महाप्रभुके प्रेमधर्ममें स्नात होनेके लिए व्यक्तिगत सम्मान–प्रतिष्ठा ग्रहण करना विषतुल्य है, तथापि केवल अपने श्रीगौड़ीय सम्प्रदायके गौरवके लिए इस उपाधिको स्वीकारकर अपने गुरुवर्गके चरणोंमें समर्पित कर रहा हूँ।''

अगले दिन ब्रजके प्रमुख समाचार पत्रोंमें इस आयोजनके सम्बन्धमें सचित्र विस्तृत जानकारी प्रकाशित हुई।]

श्रील भक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी महाराजको युगाचार्यकी उपाधिसे विभूषित करना अतिशयोक्ति नहीं

[इसी कार्तिक मासमें ६ नवम्बर, २००३ को वृन्दावनस्थित आनन्द धाममें आयोजित धर्मसभामें ब्रज एवं अन्यान्य स्थानोंसे समागत विख्यात विद्वान, वक्ता तथा सन्तोंके बीच भारतवर्षके मूर्द्धन्य विद्वान तथा सप्ताचार्य डा. वासुदेवकृष्ण चतुर्वेदीने कहा कि विश्वधर्म संसद एवं ब्रजाचार्य पीठ द्वारा श्रील भक्तिवेदान्त नारायण महाराजजीको 'युगाचार्य' की उपाधिसे विभूषित करना उचित ही है। इसमें कोई अतिशयोक्ति नहीं है। अपने वक्तव्यके समर्थनमें उन्होंने तीन कारण बतलाये।

(१) जिस प्रकार श्रीनारायण भट्टजीने ब्रज संस्कृतिको पुनर्जीवित और स्थापित किया, उसी प्रकार श्रील महाराजजी भी ब्रजरसभक्ति एवं ब्रजके संरक्षण एवं प्रचार–प्रसारमें सदैव चेष्टारत हैं। श्रील महाराजजी वर्ष–प्रतिवर्ष देश–विदेशसे अधिकाधिक भक्तोंके साथ ब्रजमण्डल परिक्रमाकर अनेक जीवोंका यथार्थ आध्यात्मिक मङ्गल कर रहे हैं। ब्रजलीला–स्थलियोंका धनके दानादि द्वारा संरक्षण करना अतिशुभ है, किन्तु इससे भी श्रेष्ठ है श्रीकृष्णकी लीलास्थलियोंकी महिमाको ब्रजमण्डल–परिक्रमाके आयोजन एवं ग्रन्थोंके माध्यमसे जगतमें प्रसारितकर जीवोंको इस ब्रजके प्रति आकर्षित करना। ऐसा करके श्रील महाराज इस ब्रजधाम (कृष्णधाम) की यथार्थ सेवा कर रहे हैं।

(२) जिस प्रकार श्रीलरूप गोस्वामी एवं श्रील सनातन गोस्वामीने श्रीमन्महाप्रभुकी कृपा प्राप्तकर भक्तिरस–सम्बन्धी ग्रन्थोंकी रचना की, उसी प्रकार श्रील महाराज भी श्रीश्रीगुरुगौराङ्गकी कृपासे उन्हीं गोस्वामी ग्रन्थों—श्रीउज्ज्वलनीलमणि, श्रीभक्तिरसामृतसिन्धु, श्रीबृहद्भागवतामृत, जैवधर्म आदिको हिन्दी एवं अन्य भाषाओंमें प्रकाशितकर जगज्जीवोंका उपकार करते हुए कृष्णकाम (कृष्णसेवा) सम्पादित कर रहे हैं।

(३) श्रीमन्नित्यानन्द प्रभु एवं श्रीहरिदास ठाकुरकी भाँति जगतमें श्रीहरिनाम–संकीर्तन एवं शुद्ध रूपमें श्रीहरिनामभजनकी प्रणालीका आचार और प्रचारकर श्रील महाराज 'कृष्णनाम' सेवा सम्पादित कर रहे हैं।

इस प्रकार युगपत् कृष्णधाम, कृष्णकाम एवं कृष्णनामके प्रति सेवापरायण श्रील महाराजको इस 'युगाचार्य' की उपाधिसे विभूषित करना यथार्थ ही है। मैं उनके चरणोंमें नमन करता हूँ।]

Photos ©Śaradā dāsī

श्रीश्रीभागवत पत्रिकाकी नयी Website
www.bhagavatpatrika.com

श्रीश्रीगुरु–गौराङ्गकी कृपासे अब श्रीश्रीभागवत पत्रिका online पर भी www.bhagavatpatrika.com नामक website पर उपलब्ध है। इस नयी website द्वारा श्रीश्रीभागवत पत्रिकाके कुछेक पुराने अंक एवं नयी संख्याओंके अंश download किये जा सकते हैं। साथ ही इस वर्षकी व्रत–तालिका भी download की जा सकती है। मुख्यत: अब इस website द्वारा श्रीश्रीभागवत पत्रिकाके नये सदस्य बनने या सदस्यता नवीकरण करानेके लिए सुविधा भारतीय तथा अन्तराष्ट्रीय भक्तोंके लिए उपलब्ध करायी गयी है।

विशेष ज्ञातव्य

श्रीश्रीभागवत–पत्रिकाके पाठकों और सदस्योंको सूचित किया जाता है कि श्रीपत्रिका इस सम्पूर्ण आठवें वर्ष श्रील गुरुदेव नित्यलीलाप्रविष्ट ॐ विष्णुपाद श्रीश्रीभक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी महाराजजीके विरह–विशेषांकके रूपमें प्रकाशित होगी। अत: इस वर्ष पत्रिकाकी दो–दो संख्याएँ एक साथ दो–दो महीनोंमें एक बार प्रकाशित होंगी।

श्रील गुरुदेवके प्रति अपनी कृतज्ञताका स्मरण करते हुए श्रील गुरुदेवके चरणाश्रित (१) श्रीयुता उमा देवी दासी (मथुरा), (२) श्रीतिलकराजएवंसाधनाबुद्धिराजा(दिल्ली),(३)श्रीविष्णुदास(ह्यूस्टन)और (४) श्रीसाधुराम एवं श्रीमती आशारानी देवी (दिल्ली) ने इस विरह–विशेषाङ्कके प्रकाशन हेतु आंशिक आर्थिक योगदानके द्वारा विशेष सेवा–सौभाग्यको वरण किया है। इन सबकी विशेष सेवाके लिये श्रील गुरुदेव अपने नित्यधामसे इन पर विशेष कृपा वर्षित करें–यही श्रील गुरुदेवके अभय चरणकमलोंमें विनम्र प्रार्थना है।

'श्रीश्रीभागवत पत्रिका' का सम्पादक एवं कार्यकारी मण्डल